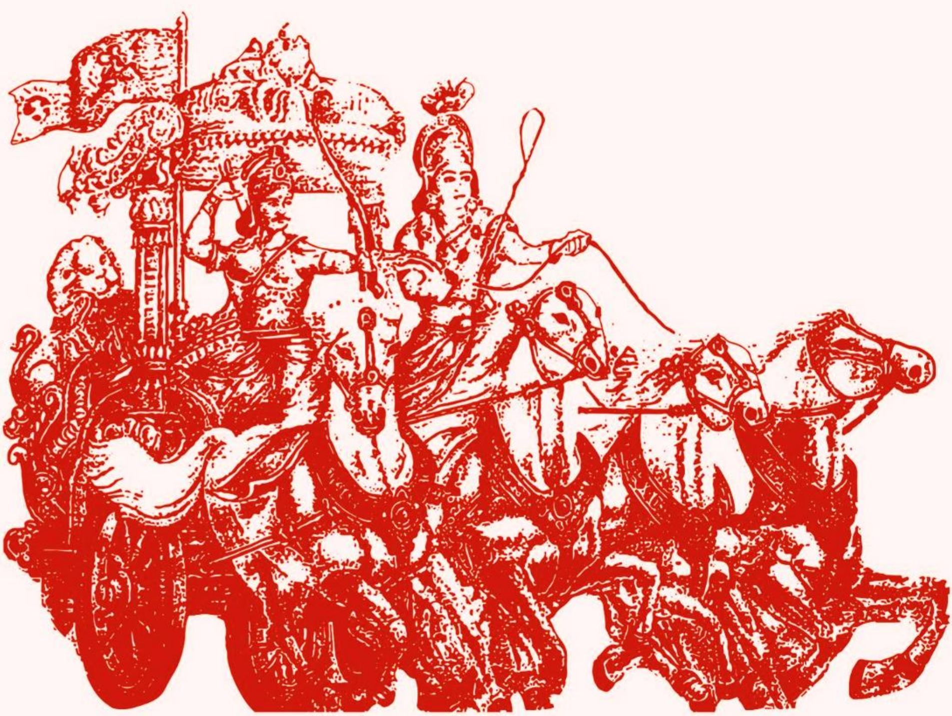
नये रिव्यू के साथ

श्रीमद्

भगवद्गीता

एक इतिहास



ऊर्ध्वमूलमःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ १५.१

के० पी० सिंह

8-14वीं सदी की प्रतिक्रान्ति का एक संस्मरणीय 'धर्म-संवाद' दस्तावेज

श्रीमद्भगवद्गीता

एक इतिहास

पूना-पाठ पर आधारित
श्रीमद्भगवद्गीता
का
हिन्दी अनुवाद
एवं
'पूर्ण-विराम' हिन्दी टीका

के॰ पी॰ सिंह

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली • वाराणसी • पटना

प्रथम संस्करण : २०२१

ISBN: 978-81-208-4282-3

मोतीलाल बनारसीदास

41 यू. ए. बंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली 110 007, **फोनः** 011-23851985

अशोक राजपथ, पटना 800 004, **फोनः** 0612-2671442

चौक, वाराणसी 221 001, **फोनः** 0542-2412331

प्रकाशक : रविन्द्र जैन

मोतीलाल बनारसीदास

www.mlbd.co.in • mlbd@mlbd.co.in

मुद्रक : Rave Scans Pvt. Ltd.

About the book
(पुस्तक रिव्यू एवं पुस्तक अंश)

श्रीमद्भगवद्गीता : एक इतिहास

विद्वानों के द्वारा भगवद्गीता एक रहस्यमयी एवं बेहद गूढ़ रचना मानी जाती है, जिसके रहस्यमय सच को जानने के लिए दुनियाभर के विद्वानों ने अपने-अपने कार्य भी किए थे, फिर भी उसका सच सामने नही आ सका कि उसका सच क्या है? उसका आधार और उसकी सम्बन्धित विषय-वस्तु क्या है? माना तो यह भी जाता है कि युद्ध से विमुख हुए अर्जुन को कुरूक्षेत्र में कृष्ण ने इसलिए उपदेशङ्क दिये थे ताकि वह कौरवों से युद्ध को तैयार हो जाए लेकिन यह तथ्य सच नही बल्कि एक मिथक है। गीता के बारे में विद्वानों ने जैसा बताया, जैसा कहा और जैसा लिखा, उनसे गीता का सच बिलकुल परे दिखाई देता है। इसलिए एक बार फिर भगवद्गीता के पुनर्पाठ की जरुरत है, सम्भवतः इस बार उसका सम्पूर्ण सच हमारे सामने हो।

हिन्दी अनुवाद एवं 'पूर्ण–विराम' टीका के साथ **के. पी. सिंह** की प्रकाशित पुस्तक **श्रीमद्भगवद्गीता : एक इतिहास** में गीता की लगभग समस्त गूढ़ता हल होती दिखाई दे रही है। प्रकाशित पुस्तक में ऐसी तमाम जानकारियाँ भी हैं, जो हमारे लिए महत्वपूर्ण साबित हो सकती हैं। भगवद्गीता अपने श्लोकों, कथनों, भावों और शब्द–भण्डार को लेकर इतनी गूढ़ रही है कि उनके कारण उसे समझना सम्भवत: असम्भव-सा रहा है, और वह विश्व के लिए एक अनसुलझी पहेली सी बन गई। गीता का विषय ऐसी विविधता लिए हुए है, जिसके कारण उसे क्रमबद्ध तरीके से नही समझा जा सका। उसका शब्द–भण्डार भी ऐसा है, जिसके बहुत से शब्दों का सम्भवत: सही अर्थ ज्ञात नही हो पाया, तो उसके भाव भी नही समझे जा सके। इसलिए गीता के बारे में सबसे पहले यह समझना होगा कि गीता क्या है? उसका विषय व आधार क्या है? वह कब और क्यों रची गई तथा वह क्या व्यक्त करती है? प्रकाशित पुस्तक में इस सबका बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से विवेचन किया गया है।

पुस्तक लगभग उन सभी बिन्दूओं को समेकित करती है, जो किसी की भी जिज्ञासा के लिए अहम हो सकते हैं जैसे, गीता का आद्य–प्रणेता कौन है? गीता के कितने संस्करण रचे गये और कब-कब? गीता के रचनाकार कौन हैं? सही रूप में कृष्ण कौन हैं और उनका काल क्या है? कुरुक्षेत्र, और कुरुक्षेत्र का युद्ध क्या है? आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर, ईश्वर, महेश्वर, भगवान् और प्रभु आदि

कौन हैं? ब्रह्म, विभूति, योग, पुनर्जन्म, जन्ममृत्युजरादुःख, कर्म, कर्मफल, यज्ञ, तप, भक्ति, ध्यान, सांख्य, संन्यास, त्याग, बुद्धि, ज्ञान, जन्म–बन्धन, मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति, अमृत, शान्ति, भावना, नैष्कर्म, दिव्यदृष्टि, ओम, जगत्, लोक, सुरेन्द्रलोक और प्राणायाम क्या हैं? स्थितप्रज्ञ, योगी, संन्यासी, देव, देवता, दैव, सुर और आसुर कौन हैं? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पापयोनि और अछुत कौन हैं? यदु और यादव कौन हैं? विराट्–पुरूष कौन और विराड्रूप क्या है? स्त्रियों के लिए वर्ण–संकर दोष और उसका भय क्या था? धार्तराष्ट्र, धृतराष्ट्र, पाण्डव, आततायी और भीष्म द्रोण आदि कौन हैं? धर्म और अधर्म क्या है? स्वजन, मित्रद्रोही, कुलघाती, लोभी और पापी कौन हैं? मूढ, अज्ञानी, मन्दबुद्धि, बुद्धिहीन, चित्तभ्रष्ट, मोहितचित्त, घातकर्ता, कायर, चोर, दीन और अधम कौन हैं? चातुर्वर्ण्य क्या है? वेद और वैदिक संस्कृति क्या है? ऊर्ध्वमूल व अधशाखावाला अश्वत्थ क्या है? छन्द व पर्ण क्या हैं? त्रिगुण अर्थात् सत्त्व-रज-तम क्या है? युक्त–अयुक्त, काम–क्रोध, निवृत्ति–प्रवृत्ति, आसक्ति–अनासक्ति, सत्–असत्, प्राण–अपान और स्वधर्म–परधर्म क्या है? भक्ति आन्दोलन और उसका कारण क्या है?..... ऐसी तमाम जिज्ञासाओं के उत्तर हमें इस पुस्तक में बड़े ही सैद्धान्तिक तरीके से मिलते हुए दिखाई देते हैं।

गीता के जिन शब्दों का सही अर्थ नही जाना जा सका था, लगभग उन सारे शब्दों का अर्थ पुस्तक की टीका में कर दिया गया है। गीता में हमें जो विविधता और क्रमहीनता दिखाई देती है तो वह भी उक्त पुस्तक में लयबद्ध और क्रमबद्ध सिद्ध होती है। गीता का कौन सा श्लोक क्यों रचा गया, सम्भवतः उसका भी कारण दिया है, तो श्लोकों में प्रयुक्त शब्दों का कारण भी, चूँकि गीता में कोई श्लोक, कोई तथ्य और कोई शब्द ऐसे ही नही दिये गये बल्कि निहित उद्देश्य से दिये गये लगते हैं। गीता के जो श्लोक भावयुक्त हैं, किन्तु उनके भावों को समझना मुश्किल रहा है, उनके भाव भी व्यक्त किये गये हैं। पुस्तक के अनुसार गीता के कथन युद्ध हेतु किसी कुरुक्षेत्र में नही दिये गये थे, क्योंकि युद्ध–प्रेरणा से अधिक गीता में अहिंसक और ज्ञान–बुद्धि प्रबल बातें हैं, जिनका युद्ध से कोई सम्बन्ध नही। पुस्तक के अनुसार भगवद्गीता उस क्रान्ति का संवाद है, जिसने भारत देश और देशवासियों को एक महासंकट से बचाया। इसलिए भगवद्गीता एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

उक्त पुस्तक के अध्ययन से हमें वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत और बुद्धचरित आदि ग्रन्थों के विषय भी समझ आने शुरु हो जाएँगे कि, वह एक–दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं, और उनका विषय क्या है? क्योंकि गीता इन सब का आद्य-ग्रन्थ है, इसलिए गीता को समझे बिना उनकी मौलिकता समझ नही आएगी। पुस्तक में गीता के अध्याय और उनके श्लोक

वर्गीकृत किये गये है, तो गीता के बहुत से कथनों की पुष्टि अन्य स्रोतों से भी किये जाते हुए दिखायी है। पुस्तक का लेखन कार्य सामान्यत: निरपेक्ष और निष्पक्ष दिखाई देता है। पुस्तक पूर्णतया वैज्ञानिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इसलिए पुस्तक में अलौकिकता, दिव्यता, दैवीयता, अन्धता, ईश्वरवादिता, कारणहीनता और भक्तिवाद की बातों का कोई समर्थन नही है, और न उनके पक्ष में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष तथ्यों का कोई समर्थन है, बल्कि स्वभाविक घटना का स्वभाविक रूप से ही बोध कराया गया है, क्योंकि गीता ईश्वरवाद, भक्तिवाद और किसी धार्मिक मान्यताओं को स्थापित नही करती बल्कि अपनी व्यक्त क्रान्तियों से देश और देशवासियों के कल्याण का दर्शन कराती है, जिसे समझकर हम उस समय के इतिहास, धर्म-दर्शन और ऐतिहासिक पात्रों को सही तरीके से जान सकते हैं।

पुस्तक की भाषा सरल तथा पढ़ने में रुचिकर एवं लयबद्ध है। इतिहास और धर्म–दर्शन जाननेवालों के साथ-साथ यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक साबित हो सकती है और इतिहास धर्म–दर्शन आदि से सम्बन्धित नई जानकारियों के बहुत से द्वार खोल सकती है, तो संस्कृत के विद्वानों के लिए भी यह बहुत शोधवर्धक हो सकती है, संस्कृत के ज्ञान में वृद्धि कर सकती है, तथा उन विद्वानों के लिए भी, जो वेद पुराण महाभारत…आदि ग्रन्थों पर शोध करते हैं। गीता के गूढ़ रहस्य के साथ इस पुस्तक से और भी बहुत कुछ जाना जा सकता है। इस पुस्तक में हमारी अपेक्षाओं और जिज्ञासाओं से कहीं अधिक विषय–वस्तु है।

Shrimad Bhagavad Gita: A History

The Bhagavad Gita is considered by scholars to be a mysterious and very esoteric composition, to know the mysterious truth of which scholars from all over the world had done their work, yet its truth could not come out, what is its truth? What is its basis and its related content? It is also believed that Krishna had given instructions to Arjuna, who had turned away from the war, in Kurukshetra so that he would be ready to fight with the Kauravas, but this fact is not true but a myth. Whatever the scholars told about the Gita, what they said and what they wrote, the truth of the Gita is seen far beyond them. Therefore, there is a need to re-read the Bhagavad Gita once again, perhaps this time its entire truth is in front of us.

With Hindi translation and 'Full-stop' commentary, 'K. P. Singh's published book ‘Shrimad Bhagavad Gita: A History’, almost all the mysteries of the Gita seem to be solved. The

published book also contains all such information, which can prove to be important for us. The Bhagavad-gita has been so enigmatic about its verses, utterances, expressions and vocabularies that it has probably been impossible to understand because of them, and it has become an unsolved puzzle for the world. The subject matter of the Gita is so diverse, due to which it could not be understood in a systematic way. Its vocabulary is also such that the true meaning of many words is probably not known, so its expressions cannot be understood. Therefore, first of all it has to be understood about Gita that what is Gita? What is its subject and basis? When and why was it created and what does it express? All this has been intelligently discussed in the published book.

The book covers almost all the points that may be of interest to anyone's curiosity, such as, who is the originator of the Gita? How many versions of Gita were composed and when? Who is the author of Gita? Exactly who is Krishna and what is his period? Kurukshetra, and what is the battle of Kurukshetra? Who are Aatma, Paramatma, Parameshwara, Ishwar, Maheshwar, Bhagwan and Prabhu etc.? What are Brahma, Vibhooti, Yoga, Punarjanm, Janmamrtyujaraadu:kh, Karma, Karmaphala, Yagya, Tapa, Bhakti, Dhyaan, Saankhy, Sannyaas, Tyaag, Buddhi, Gyaan, Janm–Bandhan, Moksh, Nirvaan, Mukti, Amrt, Shaanti, Bhaavana, Naishkarm, Divyadrshti, Om, Jagat, Lok, Surendralok and Praanaayaam? Who are Sthitaprajna, Yogi, Sanyasi, Deva, Devata, Daiva, Sur and Asura? Who are Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, Shudras, Chandalas, Papayanis and Untouchables? Who are Yadu and Yadav? Who is Virata-Purush and what is Viratswaroop? What was the Varna-hybrid defect and its fear for women? Who are Dhartarashtra, Dhritarashtra, Pandava, Atatayi and Bhishma Drona etc.? What is Dharma and Adharma? Who are Svajana, Mitradrohee, Kulaghaatee, lobhee and paapee? Who are Moodh, Agyaanee, Mandabuddhi, Buddhiheen, Chittabhrasht, Mohitachitt, Ghaatakarta, Kaayar, Chor, Deen and adham? What is Chaturvarnya? What is Vedas and Vedic Culture? What is Oordhvamool and Aadhashaakhaa Ashwattha? What are Chhand and Parna? What is Triguna i.e. Sattva-Raja-Tama? What is Yukt-Ayukta, Kama-Krodha, Nivritti-Pravrtti, Aasakti–Anaasakti, Sat-Asat, Prana-Apaan and Swadharma-Pardharma? What is the

Bhakti movement and its reason? ..... The answers to all such questions are found in this book in a very theoretical way.

The meaning of almost all the words of the Gita, whose exact meaning could not be known, has been given in the commentary of the book. The diversity and randomness that we see in the Gita, also proves to be rhythmic and systematic in the said book. Which verse of the Gita was composed, perhaps the reason has been given for it, so also the reason for the words used in the verses, since no verse, no facts and no words are given in the Gita as such, but seem to have been given with an implicit purpose. The verses of the Gita which are sentimental, but their expressions have been difficult to understand, their expressions have also been expressed. According to the book, the utterances of Gita were not given in any Kurukshetra for war, because more than war-motivation, non-violent and knowledge-intellect are strong things in Gita, which have nothing to do with war. According to the book, Bhagavad Gita is the dialogue of the revolution, which saved India and its countrymen from a great crisis. Therefore Bhagavad Gita is a historical document.

From the study of the said book, we will also start to understand the subjects of Vedas, Puranas, Upanishads, Smritis, Ramayana, Mahabharata and Buddhacharit etc., how they are related to each other, and what is their subject? Because the Gita is the original scripture of all these, so without understanding the Gita, their originality will not be understood. In the book, the chapters of Gita and their verses have been classified, so many statements of Gita have been shown to be confirmed by other sources as well. The writing work of the book generally appears neutral and impartial. The book is completely based on scientific and theoretical approach. Therefore, there is no support in the book of supernaturalism, divinity, divinity, blindness, theism, reasonlessness and devotionalism, and neither is there any support for the facts directly or indirectly in their favor, but the natural phenomenon has been understood naturally. Because the Gita does not establish theism, devotionalism and any religious beliefs, but through its expressed revolutions, it shows the welfare of the country and the countrymen, by understanding which we can know the history, religion-philosophy and historical characters of that time properly.

The language of the book is simple and interesting to read and rhythmic. Along with those who know history and religion-philosophy, this book can prove to be informative for all the readers and can open many doors of new information related to history, religion-philosophy etc. It can increase the knowledge of Sanskrit, and also for those scholars who do research on Vedas, Puranas, Mahabharata etc. A lot more can be learned from this book along with the eschatology of the Gita. This book has more content than our expectations and curiosities.

(almit books की ओर से)

प्रिय पाठकों

हमारे देश में अलग-अलग सोच के लोग हैं जो यही चाहते हैं कि जो भी लिखा जाय वह हमारी सोच के अनुसार हो। इसलिए एक लेखक के लिए यही बेहतर होगा कि वह किसी के पक्ष या विपक्ष में न लिखकर वही लिखे जो सच है और अपने किसी मत को जबरन् सिद्ध न करे। इस किताब में लेखक ने यही किया है। इसलिए किसी किताब को पूरी पढ़े व समझे बिना उसपर टिप्पणी करना अनुचित होगा क्योंकि अधूरा ज्ञान आत्महत्या के समान है। कृपया किताब को खरीदें और पढ़ें उसके बाद कुछ कहें। वैसे यह एक ऐसी दुर्लभ किताब है कि शायद ही लोगों ने इस प्रकार की अन्य किताब पढ़ी हो। इसे पढ़ने के बाद जो भी संदेह होंगे वह सम्भवतः दूर हो जाएँगे। इसलिए अपने जीवन में इस किताब को जरूर पढ़ना। शायद यही किताब गीता की सच्चाई तक ले जा सकती है। यह किताब सृजनात्मक ज्ञान का भण्डार है और चली आ रही घिसी-पिटी जानकारी से एकदम परे है। जो इसमें है वह कहीं अन्य पढ़ने नही मिलेगा।

सूची सहित पुस्तक के कुछ अंश

भगवद्गीता की तालिका

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

भूमिका

■ ■ ■ ■ ■

श्रीमद्भगवद्गीता ऐसा ग्रन्थ है जिसमें लोक-कल्याण हेतु शुचिता निहित की गई।

श्रीमद्—'सम्पन्नता से परिपूर्ण'

भगवद्गीता—'कल्याणकारी उपदेश'

अर्थात्

सम्पन्नता से भरे कल्याण करनेवाले वचन सूत्र या घोष।

जैसे आजतक भगवद्गीता एक रहस्य बनी रही है वैसे ही भारत-सम्बन्धी इतिहास और धर्म-दर्शन भी रहस्य बना रहा है। इस **श्रीमद्भगवद्गीताः एक इतिहास** पुस्तक में न सिर्फ हम गीता के मौलिक रहस्य से पूर्ण परिचित होंगे बल्कि साथ में भारत-सम्बन्धी इतिहास और धर्म-दर्शन को भी समझने के सूत्र-द्वार हमें खुलते दिखाई देंगे।

भगवद्गीता इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें उन प्रतिक्रान्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से दिखाया गया है जिनके द्वारा हमारे लिए उत्तरजीविता संरक्षित हुई अन्यथा न जाने आज हम मानव-समाज के किस विकृत-भयावह रूप में जी रहे होते। हालाँकि हर युग में लोक-मान्यताओं का वर्तमान अपने अतीत की सच्चाई से वक्री रहा है रहता है और रहेगा। वर्तमान में तो वो मान्यताएँ चलती हैं जो अपने आधारभूत सच से परे चली जाती हैं। इसलिए भगवद्गीता को लेकर इस पुस्तक में जो लिखा गया है वह उसका आधारभूत सच है जिसका वर्तमान में हम वक्री रूप देख सकते हैं कि एक अतीत की सच्चाई वर्तमान में किस मान्यताओंवाली हो गई है। (पुस्तक पृष्ठ-3)

■ ■ ■ ■ ■

स्मृति-प्रवेश

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

[आगे शीर्षकों में जो सामग्री दी गई है वह सङ्क्षिप्त है जो अपूर्ण लग सकती है लेकिन सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ने के बाद यदि इसे पुन: पढ़ा जाए तो यह पूर्णतया समझ आ जाएगी।]

एक सत्य को प्रारम्भ में ही व्यक्त कर देना उचित होगा जो ऐसा कड़वा-सच है जिसे सहन करने की धैर्यता शायद ही लोगों में हो। पूर्व में यहाँ ऐसे-ऐसे इतिहास घटित हो चुके हैं जो हमारी सोच से बिलकुल परे हैं जिनपर अपनी पूर्वाग्रह सोच थोपना या उन्हें अपनी पूर्वाग्रह सोच के अनुसार मानना लोगों की भूल होगी। इसलिए इतिहास के उस निष्कर्ष को जानते रहना बहुत जरूरी है जो लोगों की पूर्वाग्रह सोच से परे है। एक कड़वा सच यह भी है कि आजादी के बाद भारत के अलग-अलग विचारों के लोगों ने अपने-अपने लिए जैसा-जैसा इतिहास मान रखा है वह भी सम्भवत: सच नही है जिससे वह खुद भी गुमराह हैं और इतिहास के नाम पर दूसरों को भी गुमराह करते हैं कि हमारा इतिहास ऐसा था अर्थात् हम दूध के धुले थे शेष सब पापी असभ्य क्रुर लुटेरे आदि थे। पूर्व में जो इतिहास घटित हुए हैं उनका अपना सच था उनमें से किसी इतिहास को अपने से जबरन् सम्बन्धित करना अथवा किसी को अपने प्रति प्रतिकूल मानना उचित न होगा।[1] यदि बात भगवद्गीता की है तो **गाँधीजी** से अच्छा किसका दृष्टिकोण होगा उन्होंने कहा—*"गीताके कृष्ण मूर्तिमान् शुद्ध संपूर्ण ज्ञान हैं; परंतु काल्पनिक हैं। यहां कृष्ण नामके अवतारी पुरुषका का निषेध नहीं है। केवल संपूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, संपूर्णावतारका आरोपण पीछेसे हुआ है।"* और यदि बात धर्म आदि निष्पक्षता की हो तो महाकवि निराला का यह वचन सबसे सर्वोत्तम होगा कि—*"सामाजिक और राजनीतिक जटिल प्रश्नों की तरह भारत को धार्मिक प्रश्न का भी संतोषजनक उत्तर देना है। हमारे यहाँ तमाम कमजोरियों और संकीर्णताओं की जड़ में विविध धर्म-भावनाएँ ही हैं, खासकर हिन्दू और मुसलमान धर्म में।"* (पृष्ठ-5)

1- इतिहासकार डा. रमाशंकर त्रिपाठीजी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का इतिहास' की प्रस्तावना में इस प्रकार कहा है— प्रसंगवशात् विष्णुपुराण के एक कथन का साक्ष्य देना असंगत न होगा—"मैंने इस इतिहास का प्रणयन किया। भविष्य में इन राजाओं का अस्तित्व विवादग्रस्त होगा जैसा कि आज राम तथा अन्य दूसरे महान् शासकों का अस्तित्व तक भी सन्देहात्मक हो गया है। बड़े-बड़े सम्राट भी, जो सोचते थे या सोचते हैं कि 'भारतवर्ष मेरा है', समय के प्रवाह या गर्त में केवल कहानी-मात्र रह जाते हैं। ऐसे सम्राज्यों को धिक्कार है, सम्राट राघव के साम्राज्य को धिक्कार है।"

गीता के संस्करण— गीता के चार संस्करण हुए हैं। पहला— सिद्ध कपिल की प्रेरणा पर रचा गया 'साङ्ख्यशास्त्र'। दूसरा— बरमक के एक साथी विद्वान् जिसे प्रतीकरूप में बृहस्पति कहा गया उसने बरमक की मृत्यु के ठीक बाद 'लोकायतशास्त्र' लिखा जो गीता का दूसरा संस्करण था जिसका प्रयोग अल-बेरूनी ने किया था। तीसरा— मो. गौरी की मृत्यु के बाद तीसरा संस्करण बादरायण ने सम्राट अल्तमीश के काल में रचा था जिसके आधार पर 13-14वीं सदी में आचार्य शङ्कर ने अपने मित्र कृष्णद्वैपायन और वरिष्ठ कवि उशना के साथ गीता का सार्वजनिक या वर्तमान-पाठ तैयार करवाया जो स्वयं शङ्करभाष्यसहित था। गीता का यह चौथा संस्करण संवादीय शैली में रचा गया था जिसमें पूर्व जानकारी को संवाद के द्वारा बताया गया। गीता किसी पुस्तक का नाम नही था बल्कि इन संस्करणों के पदों के सङ्ग्रह को विशेष रूप से 'गीत या सूत्र' कहा गया जो अपभ्रंश में गीता बने और इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए। (पृष्ठ-24)

जारी रहेगा....

अल-बेरूनी की गीता

■ ■ ■ ■ ■

*[11वीं सदी के ईरानी मूल मुस्लिम यात्री अल-बेरूनी ने अपनी पुस्तक **किताब-उल-हिन्द** में 'तत्कालीन गीता' से तमाम सामग्री को उद्धरित किया है। वह सामग्री इतनी अधिक है जिसका कि सङ्ग्रह यही दर्शाता है जैसे कि वह सम्पूर्ण गीता का सङ्क्षेप-सार हो जिसे यहाँ 'अल-बेरूनी की गीता' का शीर्षक दिया गया है। अल-बेरूनी ने तत्कालीन गीता से अपनी पुस्तक में जो भी सामग्री उद्धरित की उस सबको आगे उसी क्रम से दिया जा रहा है साथ ही पुस्तक से अतिरिक्त जानकारी भी। — लेखक]*

"निम्नलिखित वाक्य गीता से लिया गया है। गीता 'भारत' नामक पुस्तक का एक भाग है—

''मैं ब्रह्माण्ड हूं। जन्म से मेरा आरम्भ और मृत्यु से मेरा अन्त नहीं। मैं कोई भी काम फल की इच्छा से नही करता। मैं किसी जाति-विशेष का मित्र और किसी दूसरी का शत्रु नहीं। मैंने अपनी सृष्टि में प्रत्येक को उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त दे रक्खा है। अत: जो कोई मुझे इस रूप में जानता है और निष्काम कर्म करता हुआ मेरे सदृश बनने का यत्न करता है, उस के सब बंधन खुल जाते हैं, और वह सुगमता से ही आवागमन से छूटकर मुक्त हो जाता है।'' (परिच्छेद-2 से)

उसी पुस्तक में वासुदेव आगे चलकर कहते हैं—''मनोवाञ्छित कामनाओं की पूर्ति के लिए ही बहुधा लोग परमात्मा की शरण में आते हैं। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उन्हें उनका सत्य ज्ञान कुछ भी नहीं। परमात्मा सब के सामने अभिव्यक्त नही जो उसे इन्द्रियों द्वारा देखलें। इसीलिए वे उसे नहीं जानते। उन में से कई तो इन्द्रिय के विषयों से ही परे नहीं जाते। जो उनसे आगे बढ़ते भी हैं वे प्राकृतिक नियमों के ज्ञान पर जाकर ठहर जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि इन नियमों के ऊपर भी एक ऐसी सत्ता है जिसका न तो अपना ही जन्म हुआ है और न कोई अन्य वस्तु ही उससे पैदा हुई है; जिसके वास्तविक स्वरूप को किसी ने नही जाना पर जो आप सब पदार्थों को जान रही है।'' (परिच्छेद-2 से)

''सच पूछो तो सब पदार्थ ब्रह्म रूप हैं, क्योंकि विष्णु ने ही पृथिवी का रूप धारण किया है ताकि प्राणीमात्र उस पर रह सकें। वह आप जल बना, ताकि उसका पोषण हो। उनकी वृद्धि के लिए वही अग्नि और वायु के रूप में प्रकट हुआ है। वही प्रत्येक प्राणी का हृदय है। उसने उन्हें, जैसा कि वेद में कहा है, स्मृति, ज्ञान और द्वंदों से सम्पन्न किया है।'' (परिच्छेद-3 से) (पृष्ठ-69)

जारी रहेगा....

भूमिका-पाठ

(प्रथम खण्ड)

धर्म-संवाद की भूमिका

भूमिकाध्याय-1

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

प्रथम अध्याय के 47 श्लोक 3 समूह में हैं—1-37 38-46 व 47। इस अध्याय में दो पक्षों की जो व्यूह-रचना दी गई है वह बुद्धचरित के 28वें सर्ग से मिलती है जिसमें एक तरफ मल्लों का दल था और दूसरी ओर सात पड़ोसी राजाओं का जो शास्ता की धातुओं को पाने के लिये निश्चयकारी थे लेकिन मल्ल उन पड़ोसी राजाओं को धातु देने को तैयार नही थे बल्कि उनसे युद्ध के लिये तैयार थे। तब युद्ध को तैयार देख द्रोण नामक ब्राह्मण ने उनके बीच अपनी विद्वत्ता और प्रेमपूर्वक दया से अपने वचन कहे....। *इस प्रथम खण्ड में संवादकारों ने धर्म-संवाद अर्थात् गीता की विस्तृत भूमिका को रखा है जिसका विस्तार रूप से वर्णन तीन अध्यायों में किया है और इसकी समाप्ति चौथे अध्याय के श्लोक 11 में जाकर होती है। इस भूमिका में प्रमुख और प्रभावशाली तथ्यों को ही दिया गया है लेकिन इस भूमिका को सम्पूर्ण गीता पढ़ने के बाद पुन: पढ़ना चाहिए तभी यह भलीभाँति समझ*

आएगी। भूमिका-पाठ के इस प्रथमाध्याय में तीन पक्षों को बड़ी ही सुसज्जित कृत्रिम सेना के साथ दिखाया गया है जिसका आधार तो सच है लेकिन यह व्यूह-रचना अलङ्कृत और काल्पनिक रूप में वर्णित है जिसके मूल-सार को समझना है। यह भगवद्गीता है न कि महाभारत क्योंकि गीता अपने आप में एक आद्य-ग्रन्थ है इसलिए यहाँ हमें गीता की वास्तविकता के अनुसार चलना है महाभारत के अनुसार नही। गीता में दुर्योधन धार्तराष्ट्ररूप में दिखाया है और महाभारत में धृतराष्ट्ररूप में क्योंकि यह किसी व्यक्ति के वास्तविक नाम नही बल्कि प्रतीक नाम हैं जो छुपे हुए वास्तविक व्यक्ति के स्वभाव लक्षणों को व्यक्त करते हैं। इस अध्याय में विशेष तथ्यों के साथ वर्णित वर्ण-सङ्करता फैलानेवाले परिणाम को भी पाठकजन समझने का अनुभव करें और गीता के सत्यभाव का पहचानें कि गीता का अपना व्यक्तिगत सच क्या है?

शुभारम्भ

भगवद्गीता का प्रथम उवाच धृतराष्ट्र के प्रश्न के साथ दिखाया है जिसके उत्तर में सञ्जय-उवाच द्वारा कृष्णद्वैपायन गीता का शुभारम्भ करते हैं।

साङ्ख्यशास्त्र

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥ १.१

अर्थ— धर्म-अधिकार के लिये कुरु-प्रदेश में 'एकत्र होनेवाले पक्षद्रोही स्वजन' 'मेरे धर्मांध' तो साथ ही 'पञ्चभारत' के लोगों ने हे सञ्जय क्या किया? ॥1॥

भाषा— इस उवाच व श्लोक के द्वारा धृतराष्ट्र और सञ्जय के रूप में दो विपरीत लोगों को दिखाया है। धृतराष्ट्र यहाँ परधर्मियों का मन्त्री है जिसे संवाद द्वारा यह जिज्ञासा करते हुए दिखाया गया कि सिन्ध में उसके आततायी क्या कर रहे हैं? संवाद द्वारा उसे उसकी बात का जबाव कौन दे इसके लिए सञ्जय को श्लोक में जोड़ा गया जिसे उस समय के सिन्ध-सम्बन्धित काल का सारा घटनाक्रम ज्ञात था और वह स्वयं महाभारत का आद्य-रचियता भी था इसलिए उसी से यह प्रश्न करते दिखाया गया। किन्तु संवाद के लिए सञ्जय उवाच के द्वारा इसका जबाव बाद के महाभारतकार कृष्णद्वैपायन देते हैं।

यहाँ **धर्म** उस राजनीति को कहा है जिससे पुराने समय में शासन-सत्ताएँ चलती थीं और यही उस समय का धर्म होता था। जबकि **क्षेत्र** का अर्थ है अधिकार। इसलिये **धर्मक्षेत्र** का अर्थ हुआ सत्ता का राजनैतिक अधिकार। सुदीर्घ पाँच प्रान्तवाले पञ्चभारत में एक सिन्ध-साम्राज्य भी था जिसे 'कुरु-जनपद या कुरु-प्रदेश' अर्थात् **कुरुक्षेत्र** कहा है। इसपर सन् 711 ईस्वी में अरब आक्रान्ता मोहम्मद-बिन-कासिम ने पहली बार धार्मिक एवं राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिये आक्रमण किया था। इस आक्रमण में उसका साथ देने के लिये वहाँ के सामन्त आदि लोग भी एकत्रित हुए जो एक प्रकार से दगाबाज स्वजन

कहलाने के अधिकारी बने उन्हें ही श्लोक में **समवेता: युयुत्सव:**—कासिम के आक्रमण में साथ देने के लिये एकत्र हुए वहाँ के पक्षद्रोही या स्वजन विरोधी—कहा है। जबकि परधर्मवाले धर्मांध आक्रणकारियों को **मामका:—'**मेरे धर्मांध'[2] लोग कहा है। चूँकि यह श्लोक खलीफा के मन्त्री हज्जाज के प्रतीकरूप धृतराष्ट्र (=धार्तराष्ट्र) की ओर से कहलवाया गया है इसलिये उन्हें **मामका:** कहा गया। खलीफा के मन्त्री ने अपने धर्मांध आक्रमणकारियों को भेजकर सिन्ध पर इसलिए आक्रमण करवाया ताकि वह इसपर भी अधिकार कराके इसे भी लुटवा ले तथा पश्चिम व मध्य-एसिया की तरह इसे धर्मांतरित करा सके। यद्यपि उनका यह अभियान सफल न होता यदि वहाँ के दगाबाज लोभी लोगों ने उनका साथ न दिया होता। धर्मांध परधर्मियों को गीता में **धार्तराष्ट्र** तो दूसरी ओर उन धर्मांध आक्रमणकारियों से और उनका साथ देनेवाले द्रोही स्वजनों से अपने लोक-समाज को बचानेवाले वहाँ के जन-सामान्य को **पाण्डवा:—'**पञ्चभारत के लोग' कहा है जिन्हें दोनों शत्रुओं से युद्ध करना था क्योंकि उस समय इस बृहद्-भूमि को 'पञ्चभारत'[3] नाम से भी जाना जाता था। जन-सामान्य को उन दोनों शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध के लिये सिन्ध के प्रमुख अमात्य या सिद्ध कपिल ने प्रेरित किया था। इसी युद्ध प्रेरणा पर दिये गये उनके उपदेशों को साङ्ख्यशास्त्र कहा गया। लेकिन पञ्चभारत के ये लोग शत्रुओं को और उनके कारण उत्पन्न हुई विषम परिस्थिति को देखकर पूरी तरह घबरा गये जिन्होंने युद्ध करना तो दूर उनसे अपनी जान बचाने के लिये उनका विरोध करने का साहस तक भी नही किया क्योंकि ये जानते थे कि उस आक्रमण में यहाँ के ऐसे-ऐसे सामन्त शासक और महानुभवी उच्च लोग हैं जिनका विरोध किया तो इस पृथ्वी पर इन्हें रहने के लिये भी जगह नहीं मिलेगी। इसलिये इन लोगों ने कपिल से कह दिया कि हम युद्ध नही करेंगे बल्कि इससे बचने-बचाने का कोई और उपाय देखो।[4] वहीं

2- इस प्रकार शब्दों का जो अर्थ दिया गया है वह शाब्दिक अर्थ नही बल्कि स्पष्टीकरण है।

3- *लगभग 7-8वीं सदी में भी भारत को पञ्चभारत (Five Indies) कहा जाता था जिसका नाम 'इन्तु' था। इसके पाँच विशाल सीमा प्रान्त थे। इस पञ्चभारत में भी 70 जनपद थे। चीनी यात्री हुएन-साङ्ग और इत्सिङ्ग के ग्रन्थों से ऐसा ही पता चलता है।* इस पञ्चभारत के प्रान्त इस प्रकार थे—पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और मध्यदेश। पञ्चभारत का क्षेत्र आज के गुजरात राजस्थान उ. प्र. बिहार से लेकर ईरान की सीमा तक लगता था। इन 70 जनपदों में एक कुरु जनपद (=क्षेत्र) भी था जिसमें सिन्ध क्षेत्र आता था जो उत्तर प्रान्त का हिस्सा था। इस उत्तर प्रान्त में आज का पूरा अफगानिस्तान और काश्मीर-पञ्जाब आदि तक के भी क्षेत्र आते थे। इस प्रान्त का मुख्य केन्द्र सिन्ध था और पश्चिम व मध्य प्रान्त के शासन भी इसी के अधीन आते थे।

4- जब किसी देश पर आक्रमण होता है तो उससे रक्षा के लिए सर्वप्रथम युद्ध ही विकल्प होता है किन्तु तब यहाँ लोगों को युद्ध में असमर्थ पाने के कारण अन्य विकल्प देखा गया जो ज्ञान आधारित था जिसका आधार बरमक ने रखा था। बाद में ज्ञान का वही आधार गीतासङ्घ के ज्ञानियों की परम्परा बना कि हम ज्ञान के प्रयास से ही किसी विषमता को जीत सकते हैं युद्ध आदि से नही। सिन्ध पर

रचनाकार ने इन लोगों के मुख से उन परधर्मियों द्वारा यहाँ होनेवाले गम्भीर दुष्परिणामों को वर्ण-सङ्करता के रूप में व्यक्त करवाया कि यदि वे जीत गये तो वर्ण-सङ्करता फैलेगी। इसलिये इस अध्याय में भीष्म आदि रूप में दगाबाज स्वजनों को और दुर्योधन रूप में परधर्मियों को तथा अर्जुन रूप में पञ्चभारत के लोगों को दिखलाया है। इस प्रकार श्लोक में दो नही बल्कि तीन पक्ष हैं— एक तरफ दो और दूसरी ओर एक।

गीता में धृतराष्ट्र[5] और धार्तराष्ट्र दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। अध्याय 1 व 2 में धार्तराष्ट्र तो 11वें अध्याय में धृतराष्ट्र का प्रयोग किया है। धार्तराष्ट्र और धृतराष्ट्र दोनों में एक अन्तर है कि धार्तराष्ट्र उन परधर्मियों को कहा गया है जो दूसरे की भूमि का हरण करके वहाँ के लोगों का धर्मांतरण कराते हैं उनपर अपना धर्म थोपते हैं उनकी स्त्रियों में वर्ण-सङ्करता फैलाते हैं और लोगों को मारके सम्पत्ति आदि की लूट-पाट करते हैं। जबकि धृतराष्ट्र का तात्पर्य भी कुछ ऐसा ही है और यह यहाँ के उन शासकों का प्रतीक है जो अपनी प्रजा के प्रति अन्धे थे जिन्होंने अपनी ही भूमि का एक प्रकार से हरण कर रखा था और अपनी प्रजा का हर प्रकार से शोषण करते थे और उनके प्रति बेदह निरकुंश थे और उन्होंने जनता का मानसिक दैहिक और यौन-उत्पीड़न एक खेल-तमाशा बना रखा था। यही है इन दोनों का अन्तर। इसलिए रचनाकार ने अध्याय 1-2 में धार्तराष्ट्र और अध्याय 11 में धृतराष्ट्र का प्रयोग क्रमिक समझ के साथ किया है जैसे 1-2 अध्याय में उसने धार्तराष्ट्र के रूप में परधर्मियों को दिखाया और यहाँ के दगाबाज स्वजनों के रूप में भीष्म-द्रोण आदि को जो उस समय दगाबाजी रूप में थे तो 11वें अध्याय में उसने धृतराष्ट्र नाम का एक बार

जो अरब आक्रमण हुआ था तो उन आक्रमणकारियों का साथ मोहवश वहाँ के अन्य सम्भ्रान्त लोगों ने भी दिया था तो वहीं अन्य आमजनों को उनसे युद्ध करने और परधर्म से अपने लोक को बचाने के लिए भी कहा गया था लेकिन जब उन्होंने देखा कि यहीं के सम्भ्रान्त लोग आततायियों का साथ दे रहे हैं तो वह उनके साथ लड़ाई से बचने का बहाना देखने लगे लेकिन क्यों? इसका कारण हम आगे देखेंगे...।

5- गीता में धृतराष्ट्र के दो चरित्र रूप दर्शाये गये हैं और दोनों ही रूपों में वह एक प्रकार से अन्धा दिखाया है। एक रूप में वह यहाँ के उस दु:शासन के रूप में दिखाया गया है जो अपनी प्रजा के प्रति अन्धा है जिसके पुत्रादि शासक ऐसे दु:शासनों में हर प्रकार का दुराचार करते हैं क्योंकि यहाँ के ऐसे ही दु:शासन थे जो अपने ही लोक-समाज के प्रति घोर अत्याचारी बने हुए थे। दूसरे चरित्र में धृतराष्ट्र परधर्मियों का भी सङ्केत पात्र है जिसे ‘धार्तराष्ट्र’ के रूप में कहा है। इसलिए धृतराष्ट्र को कुरुओं से सम्बन्धित कर देखने की जरूरत नही क्योंकि यह तो एक कृत्रिमता है जिसके लिए महाभारत में एक विस्तृत खानदानी कथा बनायी गई जिसके द्वारा उन सभी बातों का मूल्याङ्कन करके दिखाया जा सके जिन्हें प्रत्यक्ष नही कहा जा सकता था। इसलिए गीता महाभारत का भाग नही बल्कि महाभारत गीता की विस्तृत टीका के साथ अन्य वर्णनों का भी स्रोत है जिन्हें समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार तैयार किया जाता रहा। गीता व महाभारत के लिए भीष्म आदि पात्रों का स्रोत बुद्धचरित रहा है जिसके अन्य नामों का भी इनमें विस्तार किया गया।

प्रयोग करके यहाँ के अन्धे शासकों को दिखाया है। गीता का प्रथम उवाच द्वैतता लिए हुए है जिसमें 'धृतराष्ट्र' भी है और 'धार्तराष्ट्र' भी।

इसलिए श्लोक में धार्तराष्ट्र की ओर से तो यह कहा जानो कि 'मेरे धर्मांध लोगों ने' क्या किया? और धृतराष्ट्र की ओर से यह कहा जानो कि 'द्रोह करने के लिए एकत्र हुए हमारे स्वजनों ने' क्या किया? तो उनके विरुद्ध 'पञ्चभारत के जनसामान्य ने' क्या किया?

॥ सञ्जय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्॥ १.२
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ १.३
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ १.४
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः॥ १.५
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥ १.६

अर्थ— तो उस समय पाण्डवों के दल-समूह को देखकर राजा दुर्योधन ने (सिद्ध-) आचार्य (-द्रोण) के पास जाकर (यह-) वचन बोला ॥2॥ आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र द्वारा गठित किये गये हे आचार्य पाण्डु-पुत्रों के इस महादल को देखो ॥3॥ यहाँ युद्ध में भीम-अर्जुन के समान महाधनुषधारी शूरवीर युयुधान और विराट तथा महारथी द्रुपद॥ धृष्टकेतु चेकितान और वीर्यवान-काशिराज पुरुजित और कुन्तीभोज और नरपुङ्गव-शैब्य॥ और विक्रान्त-युधामन्यु तथा वीर्यवान-उत्तमौजा सौभद्र और साथ ही द्रौपदी के सब महारथी पुत्र हैं ॥4-6॥

भाषा— सञ्जय-उवाच के अन्तर्गत संवाद के द्वारा कृष्णद्वैपायन कहते हैं कि....। यहाँ *आचार्य* का सङ्केत साङ्ख्य-सङ्घ के *द्रोही* आचार्य से है जिसे आगे *गुरु* भी कहा है। पाण्डवों की ओर से यह जो पात्र-सूची दी है उसे कल्पित समझो लेकिन इसके आधार को इस रूप में कहीं तक सही जानो कि जब सिन्ध पर आक्रमण हुआ तो जनसामान्य लोगों को भी उनके मुकाबले में तैयार किया गया था। पञ्च-भारत के उन्हीं लोगों को अलङ्कृत योद्धाओं के रूप में सँवारा गया है। जिसके लिए योद्धायुक्त सूची अलङ्कृत रूप से बनाई गई ताकि वह पाठ को सशक्तता प्रदान करे। उस समय सिन्ध आदि शासनों में साङ्ख्य-सङ्घ के प्रमुख सिद्ध होते थे जिन्हें आचार्य द्विज गुरु ऋषि देवर्षि आदि भी कहा है लेकिन उन्हें ब्राह्मण नही कहा जा सकता॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥ १.७
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥ १.८
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ १.९
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥ १.१०
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥ १.११
तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ १.१२
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥ १.१३

अर्थ— हमारे पक्ष में जो विशिष्ट लोग हैं हे द्विजोत्तम उन्हें तो जान लो। आपके सञ्ज्ञान के लिये मैं उन लोगों को बताता हूँ (जो-) मेरी सेना के नायक (बने-) हैं ॥7॥ आप और भीष्म और कर्ण और युद्धविजयी कृपाचार्य अश्वत्थामा और विकर्ण साथ ही उसी तरह सोमदत्त-पुत्र॥ और मेरे लिये जीवन त्याग देनेवाले बहुत-से अन्य शूरवीर (जो-) सभी नानाशस्त्रधारी व युद्ध-विशारद हैं ॥8-9॥ भीष्म अभिरक्षित हमारा **वह** बल अपर्याप्त तो भीम अभिरक्षित इन पाण्डवों का यह बल पर्याप्त है ॥10॥ सब ठिकानों पर और यथा स्थान स्थित रहते हुए आप सभी ही भीष्म की ही हर तरफ से सुरक्षा करें ॥11॥ प्रतापवान् कुरुवृद्ध पितामह ने उस (परधर्मी-) दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाते हुए सिंहनाद घोष करनेवाला शङ्ख उच्चस्वर से फूँका॥ तब शङ्ख और पणवान-गोमुख और भेर्य सहसा ही बज उठे। वह शब्द शोर रहा ॥12-13॥

भाषा— ऊपर श्लोक में द्रोण को आचार्य तो यहाँ उसे द्विजोत्तम नाम से सम्बोधित किया है। यह द्रोण अपने साङ्ख्य-सङ्घ का प्रधान सिद्ध था जो सिन्ध-शासन के विरुद्ध कासिम के साथ हो गया था। उस समय शासक और सामन्तों के शासन आदि में सिद्धों के अपने-अपने सङ्घ होते थे जिनके प्रधान सिद्ध शासन आदि को देखते थे जबकि शासक अपनी कामुक भोग अय्याशियों में डूबे रहते थे। वहीं दाहिर शासन के साङ्ख्य-सङ्घ का प्रधान सिद्ध कपिल नाम से कहा गया। **विशिष्टाः** स्वजनद्रोही या दगाबाज लोगों को ही कहा है। इन श्लोकों की पात्र-सूची भी कल्पित है लेकिन आधार कहीं तक सही है। भीष्म आदि के रूप में यहाँ के उन विशिष्ट लोगों को दिखाया गया है जो अपने लोगों के विरुद्ध द्रोही बन गये थे और शत्रु पक्ष की सहायता करने के लिए उसमें शामिल हो गए थे। इन

लोगों में जो सबसे मुख्य था उसे भीष्मरूप में दिखाया है जो शत्रु के लिए नेतृत्व कर रहा था। इसलिये उसका विशेष ख्याल रखने को कहा गया। इनके विपरीत यहाँ के जनसामान्य में भीम को प्रमुख समझो। भीम का अर्थ किसी व्यक्ति से नही है बल्कि यह पञ्च-भारत के जनसामान्य लोगों की विशालता का प्रतीक है। यद्यपि दगाबाजों का साथ होनेपर भी शत्रु पक्ष का दल **अपर्याप्तम्** अर्थात् 'सीमित' था जिसे जीता जा सकता था जबकि पाण्डवों का दल **पर्याप्तम्** अर्थात् 'विशाल' था जो शत्रुओं को जीतने में सक्षम था। यदि ये चाहते तो जीत सकते थे किन्तु इन्होंने युद्ध का प्रयास नही किया क्योंकि यह ऐसे जन-सामान्य लोग थे जो अपनी आत्मरक्षा में शत्रुओं से लड़ने में भी डरते थे चूँकि इनके सामने भी कई मजबूरियाँ थीं जैसे ये उन दगाबाजों की ही प्रजा के समान थे जो शत्रु का साथ दे रहे थे फिर वह अपने मालिकों के विरुद्ध कैसे लड़ते? श्लोकों में शङ्खनाद का सङ्केत अपने-अपने दलों को उत्तेजित करने से है जो मात्र अलङ्कृत अभिव्यक्ति है॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥ १.१४
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १.१५
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥ १.१६
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥ १.१७
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥ १.१८
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥ १.१९
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥ १.२०
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत॥ १.२१
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥ १.२२
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥ १.२३

अर्थ— फिर श्वेत घोड़ों से युक्त महा-रथ में स्थित हुए माधव और साथ ही अर्जुन ने दिव्य शङ्ख बजाये॥ हृषीकेश ने पाञ्चजन्य धनञ्जय ने देवदत्त भीमकर्मा वृकोदर ने पौण्ड्र महाशङ्ख बजाया॥ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नकुल और सहदेव ने सुघोष व मणिपुष्पक॥ और बड़े धनुषधारी काशिराज और महारथी शिखण्डी धृष्टद्युम्न और विराट और अपराजित सात्यकि॥ द्रुपद और हे पृथ्वीपति द्रौपदी पुत्रों और महाबाहु सौभद्र ने सब तरफ से अलग-अलग शङ्ख बजाये ॥14-18॥ वह घोष धार्तराष्ट्र लोगों के हृदय हिलानेवाला रहा तो साथ ही शोर ने नभ और पृथ्वी को गुँजायमान् कर दिया ॥19॥ अब व्यवस्थित धार्तराष्ट्र लोगों को देखकर धनुष उठाकर शस्त्र चलाने के लिये तैयार कपिध्वज पाण्डव ने फिर हृषीकेश को हे महीपते यह वाक्य कहा— मेरे रथ को हे अच्युत दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करो ॥20-21॥ ताकि अवस्थित हुए इन युद्ध इच्छुकों को मैं देख लूँ कि इस युद्ध प्रयास में मुझे किन के साथ युद्ध करना चाहिये॥ मैं (पहले इन-) योत्स्यमान लोगों को देखूँगा जो युद्ध में धार्तराष्ट्र का प्रिय चाहनेवाले ये दुर्बुद्धि लोग यहाँ आये हैं॥22-23॥

भाषा— श्लोकों की भाषा-शैली पाठ को सुन्दर बनाने के लिए अलङ्कृत है। इनमें भी पात्रसूची कल्पित है लेकिन आधार कहीं तक सही है। इन नामसूची में पञ्चभारत के वे लोग दिखाये गए हैं जिन्हें एक प्रकार से शत्रु से मुकाबला करने के लिये प्रेरित किया गया था। **श्वैतै: हयै: युक्ते**—'सफेद घोड़ों से युक्त' का तात्पर्य उस पीड़ित जनसामान्य से है जिनके जीवन में कोई रङ्ग नही है यानि दयनीय जीवनवाला जनसामान्य[6] जिसे लड़ने को तैयार किया था और **महति स्यन्दने** का तात्पर्य 'रथरूप में किसी लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बहनेवाली विशाल भीड़ से है। यहाँ रथ का अर्थ है 'जनसामान्य या पैदल-पलटन' और महा-रथ का अर्थ है 'विशाल भीड़रूपी जनसामान्य'। इस महारथ को हाँक ले जानेवाले मुखिया कपिल को यहाँ माधवरूप में कहा है तो अर्जुनरूप में यहाँ वह पात्र है जिसे इस सब परिस्थिति के लिए साक्षी बनाया गया। श्लोक 14 के भाव को श्लोक 47 की टीका से जानें। श्लोक 16 में युधिष्ठिर को राजा कहा गया है जो किसी राज्य का नही बल्कि उसे इस दल का प्रमुख दिखाया है और जिस द्रौपदी को पाँच पतियोंवाली स्त्री कहा गया है जिसके पाँच पुत्र थे तो हकीकत में ऐसी कोई स्त्री नही थी बल्कि यह पञ्च-भारत के स्त्रीलिङ्ग का प्रतीक है जिसके लोगों को द्रौपदी के पञ्च-पुत्र के रूप में कहा गया है। हालाँकि पाण्डव दल के रूप में पञ्चभारत के इतने लोग थे यदि वे चाहते तो जमीन आसमान एक कर देते लेकिन इनमें मरने-मारने की हिम्मत नही थी। इसलिए इस अर्जुन नामक पात्र को यह कहते हुए दिखाया कि मैं पहले अपने उन स्वजन लोगों को देखना चाहता हूँ जो शत्रुओं का हित चाहते हैं और कहता है कि मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले चलो अर्थात् मैं अपनी भीड़ के साथ परधर्मी एवं स्वजन दोनों शत्रुओं को देखना चाहता हूँ कि मुझे अर्थात् 'हमें'

6- यहाँ अर्जुन के रूप में जनसामान्य की 'श्वेत-रङ्ग में दयनीय स्थिति' को दिखाया है।

किन-से लड़ना है? श्लोक में कपिध्वज का अर्थ अर्जुन के रथ पर हनुमान का प्रतीकरूप कोई झण्डा या ध्वज नही बल्कि **कपिध्वज** का अर्थ है—'मूर्ख सोच का झण्डा लिये हुए या मूर्ख सोचवाला'[7]। क्योंकि कपि मूर्ख सोच का प्रतीक होता है। इसलिए यहाँ पाण्डव लोगों को मूर्ख सोचवाला कहा गया है जो शत्रु से लड़ने की बजाय यह देखना चाहते हैं कि हमें लड़ना किससे है? उन्हें हम पहले देखेंगे। जबकि अपने लोक-समाज की रक्षा के लिए निकले लड़नेवालों को यह सब नही देखना चाहिए कि हमारे सामने कौन है? अन्यथा तुम्हें मूर्ख ही कहा जाएगा। तभी तो इन्हें मूर्ख सोचवाला कपिध्वज पाण्डव कहा गया है कि यह अजीब मूर्ख हैं। आगे श्लोक में **योत्स्यमानान्** भी 'युद्ध में शत्रु का साथ देने के लिये एकत्रित हुए दगाबाज लोगों' को ही कहा है और **धार्तराष्ट्र** यहाँ मो. बिन कासिम व उसके लोगों को जिसकी इच्छा पूरी करने के लिये यहाँ के दुर्बुद्धि दगाबाज लोग उसका साथ दे रहे थे। इन श्लोकों में रचनाकार ने यहाँ के आमजनों की मानसिकता का चित्रण किया है कि ये कैसे लोग थे और इनकी कैसी सोच थी?॥

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥ १.२४
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥ १.२५
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥ १.२६
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्॥ १.२७
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमान्स्वजनान्कृष्ण युयुत्सून्समवस्थितान्॥ १.२८* [8]
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ १.२९
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥ १.३०

7- *एक कहानी के अनुसार एक बन्दर को नदी में मछलियाँ उछलती दिखाई देती हैं तो बन्दर सोचता है कि यह डूब रही हैं और अपनी जान बचाने के लिये पानी से बाहर आने को फड़फड़ा रही हैं। यह समझ बन्दर उन्हें बाहर निकाल देता है और मछलियाँ मर जाती हैं। लेकिन बन्दर यही सोचता है कि मैंने उन्हें बाहर निकाल कर उनपर उपकार किया। इसलिये बन्दर को मूर्ख सोचवाला कहा गया है जो अपनी सोच से उलटा चलता है।*

8- जिन श्लोकों की पंक्तियों में * लगे हैं वह दूसरे पाठों से भिन्नता दर्शाते हैं।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥ १.३१

अर्थ— गुडाकेश द्वारा इस प्रकार कहने (पर-) हे भारत हृषीकेश ने दोनों सेनाओं के मध्य में उत्तम-रथ को स्थापित करके॥ सभी जनपालों तथा भीष्म-द्रोण के विरुद्ध इस प्रकार कहा हे पार्थ (शत्रु का साथ देने के लिये-) एकत्र हुए इन कुरूओं को देख ॥24-25॥ फिर वहाँ पार्थ ने पितरों पितामहों आचार्यों मामाओं भ्राताओं पुत्रों पोत्रों सखाओं॥ उसी प्रकार श्वशुरों सुहृयों और साथ ही उन सभी बन्धुओं को भी दोनों सेनाओं में अवस्थित देखकर वह कौन्तेय—॥ पर-बाध्यता से ग्रस्त होकर हताश होते हुए यह बोला हे कृष्ण उपस्थित हुए इन द्रोही स्वजनों को देखकर॥ मेरे अङ्ग काँप रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्पन और पसीना आ रहा है॥ हाथ से गाण्डीव छूट रहा है और साथ ही त्वचा जल रही है और मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है और न मैं खड़ा होने में समर्थ हूँ॥ जबकि हे केशव मैं लक्षणों को विपरीत देख रहा हूँ और न मैं युद्ध में स्वजन को मारकर (पीछे अपना-) कल्याण देखता हूँ ॥26-31॥

भाषा— यह श्लोक भी अलङ्कृत भाषा में हैं। यहाँ सङ्केत व नामोंसहित जो सूची दर्शायी गई है वह इसी अध्याय में खत्म हो जाएगी और फिर इसका सङ्केत-रूप में प्रयोग 11वें अध्याय में मिलेगा उसके बाद गीता के अन्त तक फिर इसका कोई निष्कर्ष नही। रचनाकार ने सत्यता को अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करने के लिये यह चित्रण किया है। श्लोक 24 में **उभयो: सेनयो: मध्ये** का सङ्केत कौरव पाण्डव नही बल्कि उन दो सेनाओं के रूप में 'एक धार्तराष्ट्रवाले का तो दूसरा दगाबाज स्वजनों का दल' है और **रथोत्तमम्** का अर्थ है पाण्डवरूप में जनसामान्य लोगों की महादल भीड़ जिसे उत्तम जान सिद्ध कपिल उन शत्रुओं से लड़ाने के लिए वैसे ही हाँककर पैदल ले गया जैसे रथ अपने पहियों पर चलकर जाता है और फिर इन्हें दोनों शत्रुओं के दलों का परिचय कराता है। इसलिए रथ पैदल जनसामान्य भीड़ का प्रतीक है— देखें श्लोक 47 की टीका। इस प्रकार मूर्ख सोचवाले इन लोगों को रचनाकार दगाबाज लोगों का दर्शन कराता है जिसके माध्यम से वे अपने शासन-स्वजनों को ही शत्रु का साथ देते हुए देखते हैं। श्लोक 25 में **कुरून्** अर्थात् 'कुरूओं' का इसलिए सङ्केत किया है ताकि वह कुरूप्रदेश के उन द्रोहियों को दिखा सके जो अपनों से घात करके शत्रुओं से जा मिले थे। लेकिन जब इस भीड़ ने उन द्रोही स्वजनों को वहाँ देखा तो ये अपने लिये भय का अनुभव करते हुए बोले कि हमारे तो अङ्ग सिकुड़ रहे हैं शरीर भय से काँप रहा है तथा पसीना छूट रहा है। इनका दिमाग भी चकरा गया जिसपर इन्होंने कह दिया कि हम उनके समक्ष खड़े होने में भी समर्थ नहीं हैं बल्कि हम तो यहाँ अपने लिए विपरीत परिस्थितियाँ देख रहे हैं क्योंकि इन स्वजनों का विरोध करके हमें अपने लिये कोई कल्याण

नही दिखायी देता।[9] इनका विरोध किया तो बाद में हम लोगों की आफ़त आ जाएगी। इनकी घबराहट हम श्लोकों से समझ सकते हैं। रचनाकार ने गीता में इस प्रकार इन पाण्डवरूप लोगों का दर्शन कराया है।[10] यहाँ टीका में पाण्डव आदि लोगों के लिये बहुवचन का प्रयोग अभिप्रेत है क्योंकि आगे श्लोकों में यह स्वयं बहुचवन हो जाएँगें। श्लोक 26-27 में जिन लोगों को 'दोनों सेनाओं में स्थित' कहा है तो यह वो लोग हैं जो भीष्म आदि लोगों के सम्बन्धी थे जिनमें से कोई धार्तराष्ट्र के साथ तो कोई भीष्म दल के साथ हो गये थे। श्लोक 28 में आये **कृपया परया** का तात्पर्य 'ऐसी मजबूरी से है जो नियन्त्रण से परे या बाहर हो'॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ १.३२
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ १.३३
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा॥ १.३४*
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥ १.३५

अर्थ— न मैं विजय चाहता हूँ और न हे कृष्ण राज्य और सुखों को। (ऐसे-) राज्य से हे गोविन्द हमें क्या? (ऐसे-) भोगों अथवा (ऐसे-) जीवन से (हमें-) क्या?॥ हम जिनके लिये राज्य भोग और सुखों को चाहते हैं। वे ये सब लोग (लालच में आकर अपनी-) धन-सम्पदा और प्राणों को छोड़कर युद्ध में खड़े हैं॥ आचार्य पितर पुत्र साथ ही उसी प्रकार पितामह मामा श्वशुर पौत्र तथा साला सम्बन्धी॥ पृथ्वी के लिये क्या कहना? त्रिलोक राज्य के बदले भी (या इनके द्वारा मुझे-) मारे जानेपर भी हे मधुसूदन मैं इनको नही मारना चाहता ॥32-35॥

भाषा— पाण्डवरूप में जनसामान्य लोग सिद्ध कपिल से कहते हैं कि....। इन श्लोकों में एकवचन अब बहुवचन हो गया क्योंकि ये बातें बहुवचन द्वारा ही कही जा सकती

9- यहाँ अर्जुन के रूप में जनसामान्य की 'कुटिल या धोखेबाज चाल' को दिखाया है।

10- शायद रचनाकार के लिए यहाँ के जनसामान्य भीरू रक्त थे जो 'मङ्गोल-जाति' 'यूरोपियन-जाति' 'जापानी-जाति' 'मेसो—पर्शियन' और 'मुस्लिम जनसामान्य' लोगों की तरह वीर नही थे जो अपने देश और शासक के पीछे मरने-मारने के लिये तैयार रहते थे। लेकिन यह लोग इसलिए वैसे नही बन पाए क्योंकि यहाँ के शासकों ने इन्हें शोषित कर हर प्रकार से कमजोर-दयनीय बना दिया था उन्होंने इनके साथ कभी मानवीय सहयोग नही किया। जबकि ग्रीक मङ्गोल आदि सम्राट अपने जनसामान्य को अपने परिवार का हिस्सा मानते थे। इसलिये उनके लोग वीर थे।

हैं। इसलिये 'हम' आदि सर्वनाम का प्रयोग किया गया। दगाबाजों की ऐसी स्थिति को देखकर यहाँ के लोग कहने लगे कि इनसे युद्ध करके न तो हमें अपने लिये विजय चाहिये और न सुख। हमें ऐसे जीवन से कोई लेना-देना नही। हम तो इतने सामान्य लोग हैं कि अपना भविष्य भी तय नही कर सकते बल्कि हम अपने जिन स्वजन लोगों के लिये राज्य सुख आदि की इच्छा करते हैं कि वह ठीक से रहे....। लेकिन यहाँ तो हमारे अग्रणी स्वजन ही न जाने किस लालच में आकर अपनी राज्य-सम्पदा और अपने जीवन का मोह छोड़कर शत्रु का साथ देने के लिये खड़े हैं। इसलिये हम लोग अपना राज्य (=पृथ्वी) बचाने के बदले भी नही लड़ सकते। त्रिलोक के बदले भी हम इनसे नही लड़ेंगे या ये हमें दगाबाजी करके मार दे तब भी हम इनसे लड़ना नही चाहेंगे और न हम इन्हें मार सकते हैं। अर्थात् हमें इनसे लड़ने का कोई भी लालच दिया जाये तो भी हम इनसे नही लड़ेंगे। ऐसी बाध्य स्थिति थी इन लोगों के सामने जिसके कारण ये उनका सामना करने से भी घबरा रहे थे क्योंकि पीछे फिर इन लोगों को उनसे अपने प्रति होनेवाली क्रुरता का भय था।

इन श्लोकों में तो ये लोग अपने स्वजनों के प्रति न लड़ने के लिये वचनबद्ध दिखा दिए गये लेकिन अगले श्लोकों में कुछ ऐसी ही बात धार्तराष्ट्र लोगों के प्रति कही गई जैसे— ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः॥ १.३६
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्सबान्धवान्।*
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥ १.३७ —1

॥1 भाग समाप्त॥

अर्थ— धार्तराष्ट्र लोगों को मारकर हे जनार्दन हमें क्या खुशी होगी? इन 'आततायियों' को मारकर हमें (दण्डस्वरूप उल्टा-) पाप ही (भोगने को-) मिलेगा ॥36॥ इसलिये बान्धवोंसहित धार्तराष्ट्र लोगों को मारने के लिये हम योग्य नही हैं क्योंकि स्वजन को मारकर हे माधव (फिर-) हम कैसे सुखी रह पाएँगे? ॥37॥

भाषा— स्वजनों के बारे में अपनी बात स्पष्ट करते हुए आमजन अब धार्तराष्ट्र लोगों के बारे में कहते हैं कि इन शत्रुओं से लड़कर हमें कुछ भी नही मिलेगा। इन आततायियों से लड़े तो हमारे जो स्वजन इनके साथ हैं वे ही हम लोगों को उल्टे पाप का दोषी ठहरा देंगे कि तुम इनके विरुद्ध कैसे हो गये? और फिर हमें इनसे दण्डस्वरूप पाप भुगतना पड़ेगा। आगे श्लोक में कह ही दिया है कि जिन धार्तराष्ट्र लोगों के साथ **सबान्धवान्**- 'सम्बन्धियोंसहित भीष्म आदि लोग' हैं उन्हें हम मारने के योग्य नही हैं और यदि हमने उनके विरुद्ध जाने का प्रयास किया तो हम फिर कहीं के नही रहेंगे। अर्थात् इस विषम परिस्थिति में स्वजनों से उलझकर हमें कोई खुशी मिलनेवाली नहीं है। अन्यथा फिर हम इनके दण्ड से अपने-आप को नही बचा सकते। श्लोक 37 में 'स्वजनम्' का आशय है कि

हम लोग तो उन्हें अपना समझते हैं लेकिन वह नही क्योंकि वह द्रोही हो गये हैं। उस समय इस प्रकार के हालात थे जिसका गीता हमें वास्तविक बोध कराती है कि यहाँ का जनसामान्य स्वजनों और शत्रुओं से लड़ने में क्यों इतना भयभीत था? क्योंकि वह खुद दयनीय जीवन में जी रहा था और पहले से ही शासन के द्वारा शोषित एवं पीड़ित था। तो क्या ऐसे लोग लड़ने के लिये समर्थ होते थे?॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥ १.३८
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥ १.३९
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥ १.४०
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥ १.४१
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ १.४२
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥ १.४३
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥ १.४४

अर्थ— यद्यपि लोभ से अपहृत-चित्त हुये ये स्वजन कुल का क्षय करनेवाले दोष को और मित्रद्रोह में पाप को नही देखते॥ (तो-) कुल का क्षय करनेवाले दोष को समझनेवाले हम लोग इस पाप से पूर्व-निवारण के लिए हे जनार्दन क्यों न सोचें? ॥38-39॥ कुल के क्षय से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं। कुलधर्म के नष्ट होनेपर सारा कुल—'अधर्म अभिभवति' कहा गया है॥ अधर्म के अभिभव होने से हे कृष्ण कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के दूषित होनेपर हे वार्ष्णेय वर्ण-सङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है ॥40-41॥ (तो-) वर्ण-सङ्कर सन्तान कुलघातियों और कुल को नरक ले जानेवाली होती है क्योंकि पिण्ड-जल से लुप्त क्रियावाले इनके पितर पतित हो जाते हैं॥ इन वर्णसङ्करकारक दोषों से कुलघातियों के शाश्वत कुलधर्म और जातिधर्म खत्म हो जाते हैं ॥42-43॥ कुलधर्म नष्ट होनेवाले मनुष्यों का वास नरक में नियत होता है हे जनार्दन ऐसा हमने सुना है ॥44॥

भाषा— यहाँ जनसामान्य के सामने एक नही बल्कि दो शत्रु थे जिन्हें बाहरी शत्रु की अपेक्षा अपने स्वजन अधिक खतरनाक दिखाई दे रहे थे। यह सच भी है कि जब अपने लिये अपने ही घर में शत्रु बैठा हो तो अपनों को मारने के लिये बाहरी शत्रु इतना भयावह

नही होता जितना कि अपना शत्रु। इसलिये रचनाकार ने बाहरी शत्रुओं से अधिक यहाँ के दगाबाज स्वजनों को विस्तृत रूप से दिखाने का प्रयास किया है। जिनकी श्लोकों में दगाबाजी की बेरहम मानसिकता दिखा दी है कि उन्हें अपने ही लोगों की कोई चिन्ता नही। यदि ये शत्रु का साथ न देकर अपने राज्य की रक्षा करते तो शायद ही शत्रु विजय कर पाता। इसलिये असली दोष बाहरी शत्रु का नही क्योंकि उसका कार्य तो आक्रमण करना है। असली दोष तो यहाँ के दगाबाज लोगों का था जिनके कारण अन्य लोगों को बहुत कुछ भोगने की चिन्ता सता रही थी। गीता के ये श्लोक सरल और सीधी भाषा में स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं जिनका भाव आसानी से समझ में आता है। बुद्धिप्रबल ये श्लोक रचनाकार ने यहाँ के लोगों की ओर से बुलवाये हैं जो रचनाकार की बुद्धि का बेजोड़ कौशल है क्योंकि जो परिणाम इन श्लोकों में बताये गये हैं उस भयावहता को यहाँ के लोग समझने में असमर्थ थे इसलिये रचनाकार ने स्वयं ही अपनी तरफ से इन श्लोकों में परिणामों को व्यक्तकर इन्हें इनकी ओर से बुलवाया न कि इनके नेता की ओर से जिसका कि सङ्केत भविष्य की ओर भी था।

इन श्लोकों में सत्य दर्शाया है कि यहाँ के जो स्वजन थे वह शत्रु के दिये लोभ से इतने मोहित हो गये थे कि उन्हें इस बात का एहसाह ही नही हुआ कि इसका कितना भयावह दुष्परिणाम हमारे अपने लोगों को भी भुगतना पड़ेगा। जिन्होंने अपने ही जन-समुदाय को नष्ट करनेवाले न तो इस दोष को समझा और न अपने मित्र आदि लोगों से धोखा करने में कोई पाप देखा। जिनके विरुद्ध जनसामान्य भी कुछ करने में असमर्थ थे इसलिये उन्होंने मान लिया कि हम तो होनेवाले इस पाप को समझ रहे हैं फिर क्यों नही हम इस पाप से अपनों को बचाने के लिये कोई उपाय सोचें जो ऐसा होने से पूर्व निवारण कर सके? श्लोक में **निवर्तितुम्** का तात्पर्य Preventing, Protection, Covering, one who prevents से है। जैसी परिस्थिति दिखाई दे रही है उससे तो अपने लोगों के कुल-परिवारिक समुदाय नष्ट-भ्रष्ट होते दिखाई दे रहे हैं क्योंकि कुल के नष्ट होने से हम लोगों में हमारे पूर्वजों की जो वंशज परम्परा चली आ रही है वह खत्म हो जाएगी और हमारा कुल अधर्म से दबा दिया जाएगा क्योंकि हमारे दगाबाज लोगों के कारण शत्रु हम पर हर प्रकार से विजय होगा और वह फिर अपना अधर्म थोपेगा तथा उनके लोग हमारी स्त्रियों सङ्ग संसर्ग करेंगे। जो 'अधर्म अभिभवति' है। यहाँ **अभिभवति** का तात्पर्य 'परधर्मी शत्रुओं के उस संक्रमण से है जिसके द्वारा वे अन्य जन-समुदाय को जीतने या दबाने के बाद उनका शोषण करते थे तथा उनकी स्त्रियों सङ्ग संसर्ग करके उन्हें भ्रष्ट करते थे जिससे उनमें शत्रु के खून की सन्तान पैदा हो और साथ ही उनपर अपने धर्म आदि नियमों को थोपते थे जो दूसरे के लिये अधर्म कार्य था। ऐसा न हो इसलिये इसका पहले से ही उपाय खोजो और उससे अपने लोगों को सचेत करो। अन्तत: अगले श्लोक में स्पष्ट कहा है कि शत्रु का ऐसा अधर्म फैला तो उनके संसर्ग द्वारा हमारी स्त्रियाँ दूषित की जाएँगीं और स्त्रियों के पर-संसर्ग से दूषित

होनेपर उनसे वर्णसङ्कर या शत्रु के खून की सन्तानें पैदा होंगी। ऐसा हमारे कुल के साथ तो होगा ही लेकिन इससे कुलघाती भी नही बचेंगे जो शत्रु का साथ दे रहे हैं। यहाँ दगाबाज स्वजनों को ही कुलघाती कहा है जिनके कारण कुल का विनाश होते दिखाई दे रहा था क्योंकि जो वर्ण-सङ्कर सन्तानें पैदा होंगी वह इन कुलघातियों के साथ-साथ हम लोगों को भी नरक अर्थात् परधर्म के गन्दे माहौल में ले जाएँगीं। ऐसी सन्तानें क्यों नरकीय होंगी इसका कारण बताते हुए कहा है कि इन वर्ण-सङ्कर सन्तानों के खून में उनके माता-पिता अथवा उनके स्त्री-पुरुषरूप पूर्वजों का खून नही होगा बल्कि शत्रु के खून से वह सब नष्ट हो जाएगा जो सच है। 42-43 श्लोकों में स्पष्टत: कुलघातियों के पतन की भी बात की है जो स्वयं भी शत्रु के संक्रमण से नही बचेंगे। इनमें भी वर्ण-सङ्कर रूप में पराये खून से दोषयुक्त सन्तानें पैदा होंगी जो इनके भी कुलधर्म और जातिधर्म को खत्म करेंगी जिनमें सनातन पूर्वजों के खून की वंशजता चली आ रही थी। इसलिये परिणामस्वरूप कहा गया है कि इस प्रकार जिन लोगों का कुलधर्म शत्रुओं के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट होगा उन लोगों की स्थिति तो परधर्म के गन्दे माहौल में तय है।

अर्थात् **कुलक्षये**—‘कुल या वंश-परम्परा के नाश पर’ **कुलधर्मा: सनातना:**—‘कुल की सतत् पूर्वज-वंशजता’ नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी और इस प्रकार कुल का धर्म या मर्यादा भ्रष्ट होनेपर **अधर्म:**—‘बाहरी लोगों के संसर्ग से हमारे परिवारों में उत्पन्न रक्तमिश्रित पापधर्म’ फैल जाएगा। इस अधर्म से हमारी स्त्रियाँ दूषित की जाएँगी जिनसे वर्ण-सङ्कर सन्तान पैदा होंगी जो हमारे कुल परिवारों के लिए नरक या बरवाद करनेवाली सिद्ध होंगी क्योंकि इन वर्ण-सङ्कर सन्तानों में इनके माता-पिता और पूर्वजों का मूल रक्त नही होगा बल्कि अधर्म-संसर्ग से इनमें पितरों की **लुप्तपिण्डोदकक्रिया:**—‘लुप्त हुई शुक्र-अण्ड क्रिया’ या पूर्वजता का रक्त क्रम टूट जाएगा जिससे इनकी मूल वंशजता खत्म हो जाएगी। इस प्रकार का दोष **कुलघ्नानाम्**-‘कुल की हत्या करनेवाले लोगों’ की देन होगी जिससे **कुलधर्म**[11] और **जातिधर्म**[12] खत्म हो जाएँगें जिनकी **शाश्वता:**-‘पीढ़ियों से निरन्तरता चली आ रही थी’ यानी हमारे अन्दर हमारी पूर्वज पीढ़ियों का जो खून चला आ रहा था वह खत्म हो जाएगा और इस प्रकार जब हमारा कुलधर्म दूषित होकर नष्ट हो जाएगा तो हम लोगों का **वास:**—‘स्थान

11- कुलधर्म का अर्थ है ‘मानव-समाज’ जैसे कि किसी देश या क्षेत्र में रहनेवाले लोगों का समाज जो उस जगह अपनी लम्बी या सतत् पूर्वजता के साथ रह रहा है। यदि ऐसे समाज के साथ किसी बाह्य समाज का संसर्ग हो जाए तो उसकी सतत् पूर्वजता खत्म हो जाएगी।

12- जाति का अर्थ है ‘पहचान’ जैसे कि इन्सान अपने जिस प्रकार के मानव-समाज में रह रहा हो तो उसमें उसकी एक पहचान हो जाती है जिसे जातिधर्म कहा है। यदि मानव समुदाय की उस पहचान पर किसी परधर्म का प्रभाव हो जाए तो फिर उसकी पहचान उसके अनुसार होने लगेगी और फिर वह समुदाय उसी अनुसार अपने को दर्शाएगा।

स्थिति या अवस्था' **नरके**—'बुरी या हीन हालत में' **नियतम्**—'सुनिश्चित' हो जाएगी—ऐसा हम जानते हैं।

सङ्क्षेप में हमारे लोभी प्रवृत्तिवाले कुलघाती स्वजनों के सहयोग से परराष्ट्र लोग हम पर हावी होंगे और अपने अधर्म से हमारी स्त्रियों को संसर्ग से दूषित करेंगे जिससे अवैध सन्तानें जन्म लेंगी जिससे हमारा जाति और कुलधर्म रक्तमिश्रण होकर नष्ट हो जाएगा और ये सन्तानें अधर्मी प्रवृत्तिवाली होंगी जिससे यहाँ बुरी स्थिति पैदा होगी।

यदि यह विषय महाभारत के अनुसार देखा जाए तो सच्चाई हाथ नही आएगी। यह तो गीता की सच्चाई है जो गीता के अनुसार ही समझ में आएगी क्योंकि महाभारत के अनुसार तो अभी युद्ध भी शुरु नही हुआ था कि उससे पहले ही अर्जुन के हाथ-पैर काँपने लगे। कौन पक्ष जीता कौन पक्ष हारा इसका भी अभी निर्णय नही हुआ था और उससे पहले ही बीच में वर्ण-सङ्कर आदि की बातें आ गईं— क्यों? और अर्जुन के बहुवचनीय रूपों को इस वर्ण-सङ्करता का भय क्यों सताने लगा? इसका जबाव हमें मिल गया होगा। यदि हम महाभारत की कृत्रिम-कथा के अनुसार देखें तो युद्ध के लिये एक परिवार के दो पक्ष कौरव-पाण्डव थे। यदि इसमें से कोई पक्ष मारा जाता और जीता हुआ पक्ष उनकी स्त्रियों के साथ संसर्ग सम्बन्ध बनाता तो उनकी सन्तानों को हम वर्ण-सङ्कर नही कह सकते क्योंकि उनका परिवार एक ही था। हालाँकि वर्ण-सङ्कर को लेकर विज्ञान के अनुसार कुछ और ही परिभाषा आती है लेकिन वर्ण-सङ्कर सन्तान वास्तव में उसे कहते हैं जब दो भिन्न विचारवादी मानवीय नस्लों का संसर्ग हो अथवा बाहरी देश की कोई मानव प्रजाति किसी दूसरे देश की मानव प्रजाति के साथ संसर्ग करती है तो उससे उत्पन्न सन्तान वर्ण-सङ्कर कहलाएगी। कौरव-पाण्डव लोगों के बीच वर्ण-सङ्कर सन्तान पैदा होने का कोई सवाल ही नही पैदा होता बल्कि वे तो एक ही परिवार के रक्त की सन्तान मानी जातीं न कि वर्ण-सङ्कर। इसलिये यदि रचनाकार ने वर्ण-सङ्कर सन्तान की बात की है तो इससे एक ही परिवार—कौरव-पाण्डवों—की बात निराधार साबित हो जाती है कि इनके बीच कोई युद्ध हुआ था क्योंकि इनसे उत्पन्न सन्तान वर्ण-सङ्कर नही कही जा सकती बल्कि यह बात परराष्ट्रवाले या परधर्मी लोगों के बारे में कही गई जिनसे वर्ण-सङ्करता का खतरा था। न सिर्फ वर्ण-सङ्करता का बल्कि उससे ज्यादा यहाँ के लोगों के लिये परधर्म-संक्रमण का खतरा दिखाई दे रहा था। और यही आद्य-प्रणेता और उसके सङ्घ के लिये सबसे अधिक चिन्ता का विषय था जिसने इस महामारी को अपनी जन्मभूमि (बलख) और उसके आस-पास के क्षेत्रों में देखा था। इसलिए ऐसा परिणाम आद्य-प्रणेता बरमक तो जानता ही था कि परधर्मी ऐसा ही करते हैं साथ ही रचनाकार की सङ्घ परम्परा भी जानती थी।

वर्ण-सङ्करता के भय की बात रचनाकार ने लोगों के मुँह से क्यों बुलवायी यह जानना जरूरी है? जाहिर था कि परधर्मी विजय के बाद यहाँ की स्त्रियों के साथ बलात् संसर्ग करेंगे क्योंकि पीछे देशों में ऐसा हो चुका था। जबकि यहाँ के लोग शत्रु की सहायता

कर रहे थे जिनको ऐसे पतन की कोई चिन्ता नही थी। इसलिये यहाँ के लोगों को इस बलात् संसर्ग से उत्पन्न होनेवाली वर्ण-सङ्कर सन्तान से भयभीत दिखाया गया। जबकि ये लोग न तो उन्हें युद्ध में हरा सकते थे न ये उनके इस वीभत्स कदम को रोक सकते थे और न ये स्वजनों का विरोध कर सकते थे। इसलिए रचनाकार ने युद्ध सेना का रङ्गमञ्च खींचकर शत-प्रतिशत घटनेवाली वर्ण-सङ्कर घटना की चिन्ता जाहिर कर दी जो भविष्य को भी ध्यान में रखते हुए कही गई थी। श्लोक 42 में **लुप्तपिण्डोदकक्रिया:** का आशय किसी श्राद्ध-कर्मकाण्ड से सम्बन्धित नही है क्योंकि जब वर्ण-सङ्कर सन्तान पैदा होगी तो उसमें पूर्वजों का रक्त-अंश होगा ही नही। इसी के लिये 'लुप्तपिण्डोदकक्रिया:' शब्द बनाया गया। अर्थात् वर्ण-सङ्कर सन्तानों में पूर्वजों का अण्ड-शुक्राणु क्रियावाला खून नही होगा बल्कि बाहरी लोगों का रक्त निवेश हो जाएगा।

यही गीता की सच्चाई है। परधर्म के इसी संक्रमित दोष को फैलने और उससे इस लोक-समाज को बचाने के लिए यदि लगातार गीतासङ्घ को प्रतिक्रान्तियाँ करनी पड़ीं तो यहाँ के लिये ये उनका त्याग था कि वे इस लोक-समाज को ऐसे संक्रमण के हवाले नही देखना चाहते थे और आद्य-प्रणेता को तो ये ज्ञात ही था कि परधर्म जिधर भी गया उसने वहाँ की संस्कृति को न सिर्फ नष्ट-भ्रष्ट किया बल्कि वहाँ की स्त्रियों को भी बलात् रूप से संक्रमित करके छोड़ा और वहाँ की मानवता पर अपना जबरन् धर्म थोप दिया॥

बोध— जो लोग इस बात को मानते हैं कि कुरुक्षेत्र में कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिये उपदेश दिये थे तो उन्हें सोचना चाहिए कि उन उपदेशों में इस वर्ण-सङ्करता का क्या औचित्य था? जिसका इतना भय दिखाया गया। जबकि वर्ण-सङ्करता का नाम कृष्ण ने अपनी ओर से लिया ही नही। ये तो अर्जुन की ओर से बोला जा रहा है और वह भी परिणामसहित अर्थात् जो ज्ञान कृष्ण को बताना चाहिए वह ज्ञान अर्जुन बता रहा है। क्योंकि जब लोग ऐसी विषम परिस्थिति को समझेंगे तो वे खुद कहेंगे इससे बचो। वहीं अर्जुन एकवचन था वह बहुवचन हो गया जिसके लिये रचनाकार को 'हम' 'हमारे' जैसे सर्वनाम प्रयुक्त करने पड़े क्योंकि 'हम' सर्वनाम के बिना ये कथन कहे नही जा सकते और ऐसे सर्वनाम गीता में ही नही बल्कि परधर्मग्रन्थ में भी खूब प्रयुक्त किये गए हैं। इसलिए गीता को लेकर जो भ्रम फैला हुआ है उसे पूर्णतया बदलने की जरूरत है॥

॥ विशेष भाग समाप्त॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ १.४५
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ १.४६—2

अर्थ— **ओ हो! 'हमलोग' अर्थात् 'हमारे दगाबाज स्वजन' महापाप करने के लिये प्रवृत्त हैं। जो राज्य-सुख के लोभ से अपने लोगों अर्थात् 'स्वजनों' को मारने अर्थात् 'बरबाद करने' के**

लिये उद्यत हो गये हैं॥ यदि मुझ अप्रतिकार करनेवाले शस्त्ररहित को शस्त्रधारी धार्तराष्ट्र लोग रण में मारें— वह मेरे लिये अधिक अच्छा होगा ॥45-46॥

भाषा— जनसामान्य लोगों के रूप में यह दु:ख रचनाकार ने उनके ही द्वारा प्रकट करवाया है कि हमारे लोग कितने लोभी हैं जिन्हें अपने लोभ और ईर्ष्या आदि के कारण अपने ही लोक-समाज के प्रति कोई प्रेम नही है और उन्हें ऐसा महापाप करने में कोई भय नही है न खुद मरने का भय है न उन्हें अपने लोगों की बरबादी का भय है। इसलिये अ-प्रतिकार अर्थात् 'अपने स्वजन आदि का विरोध न कर पाने के कारण' विवश लोगों ने खुद ही कह दिया कि हमें ही मार दो या हमें ही मर जाने दो यही हमारे लिए अच्छा होगा। वहीं अर्जुनरूप को 'शस्त्रहीन' कहकर यह भी दिखा दिया कि पाण्डवों के रूप में ये सामान्य लोग निहत्थे थे क्योंकि जिस अर्जुन पर गाण्डीव था तो वह शस्त्रहीन कैसे हो सकता है? महाभारत (आदि-पर्व अध्याय-224) तो कहता है कि गाण्डीव धनुष उसे अग्नि देवता ने दिया था फिर तो उसे बिना कँप-कपाये उससे शत्रु को मार देना चाहिये था जिनके कारण वह वर्ण-सङ्करता को लेकर इतना भयभीत था। यह अर्जुन नही बल्कि यहाँ की निहत्थी आम जनता थी। जो अपने दगाबाज स्वजनों का विरोध भी नही कर सकती थी। लेकिन जहाँ रचनाकार ने पूर्व श्लोकों में सेनाओं को शस्त्रयुक्त दिखाया तो इस श्लोक में शस्त्रहीन कहकर उस सच्चाई को भी व्यक्त कर दिया कि पाण्डव रूप में ये सामान्य लोग शस्त्रहीन या निहत्थे थे॥

बुद्धचरित 6.9 में कहा है—

को जनस्य फलस्थस्य न स्यादभिमुखों जन:।
जनीभवति भूयिष्ठं स्वजनोऽपि विपर्यये॥

अर्थात्- फलमें स्थित (=फल देनेवाले व्यक्तिके) अनुकूल कौन नहीं होगा? विपरीतमें (यानि फल मिलनेकी आशा नहीं रहनेपर) स्वजन भी प्राय: पराया हो जाता है।

॥सञ्जय उवाच॥
एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥१.४७—3
॥समाप्त॥

॥1वाँ अध्याय समाप्त॥

जारी है......

अर्थ— सङ्ख्य-भूमि में इस प्रकार कहकर शोकसंविग्न मनवाला अर्जुन बाणसहित धनुष छोड़कर रथ के बगल में बैठ गया ॥47॥

भाषा— रचनाकार ने इस अन्तिम श्लोक के द्वारा अर्जुन के रूप में निहत्थे लोगों को दु:खी होकर एक तरफ बैठ जाने की बात कहकर पहले चरण में युद्ध अवसर का विराम लगा दिया कि जिन लोगों को युद्ध के लिए हाँककर ले जाया गया था वे युद्ध करने में

असमर्थ थे। इस श्लोक में **सञ्चये** शब्द बहुत महत्वपूर्ण है जिसका अर्थ रणभूमि या युद्धभूमि नही बल्कि यह वह भूमि है जहाँ सिद्धों ने जनसामान्य को उपेक्षित और पीड़ित बनाके रखा गया था क्योंकि उन्हें दयनीय बनानेवाले नियम सिद्ध या साञ्चय-सङ्घ प्रमुखों ने ही बनाये थे। इसलिए इस श्लोक के भाव को समझने की जरूरत है। सञ्चय उसी सिन्ध भूमि को कहा है जिसपर कासिम ने आक्रमण किया था तो वहीं जिस भूमि पर जनसामान्य को पीड़ित बनाके रखा गया था तो ऐसे पीड़ित निहत्थे लोग कैसे शत्रुओं से लड़ सकते थे जिन्हें अपना मतलब निकालने के लिए कपिल नामक सिद्ध लड़ाने के लिए ले गया था लेकिन सञ्चय भूमि पर सताये गये ये लोग अपने ही प्रति विषम स्थिति देखकर अपना सारा साहस छोड़ उस भीड़रूपी रथ के बगल में परस्पर बैठ गये जिन्हें हाँक के ले जाया गया था। **विसृज्य सशरम् चापम्** का तात्पर्य है बाणरूपी जन-सामान्य सहित धनुषरूपी युद्ध की जिस कमान या लक्ष्य को पकड़ा था उसे छोड़ दिया। सञ्चय-भूमि के नाम से यह ज्ञात हो जाता है कि यह सब उसी भूमि पर घटित हो रहा था जिस भूमि पर लोग पीड़ित बना दिये गये थे और उसी भूमि पर वह हताश होकर बैठ गये थे। ऐसे ही श्लोक 14 में **महति स्यन्दने**—'रथरूप में किसी लक्ष्य की ओर द्रुतगति से बहनेवाली विशाल भीड़ को कहा है जिसे उसका मुखिया रथ की तरह हाँक कर लिये जा रहा हो' तथा **श्वैतैः हयैः युक्ते** अर्थात् 'सफेद घोड़ों से युक्त' द्वारा उस पीड़ित जनसामान्य को दिखाया गया है जिनका रङ्ग उतरा हुआ है जिनके जीवन में कोई रङ्ग नही है जिनपर सफेदी छायी हुई है यानि दयनीय हालतवाले लोग जिन्हें युद्ध के लिए ले जाया गया था किन्तु क्या ऐसे पीड़ित लड़ सकते थे? वहीं **स्थितौ** का अर्थ किसी विशाल रथ में 'स्थित हुए' नही बल्कि इसका भाव—'रथ की तरह पैदल बहनेवाली विशाल जन भीड़ में स्थित माधवरूप में कपिल सिद्ध है जिसने पाण्डवरूप में जनसामान्य के साथ शङ्ख बजाया अर्थात् हुङ्कार भरी कि हम भी अपनी भूमि की सुरक्षा के लिए आ गये हैं॥ (पृष्ठ-97-115)

अध्याय-2

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥ २.३९
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ २.४०

अर्थ— तेरे लिये यह बुद्धि साङ्ख्य के बारे में कही गयी तो योग के बारे में इस बुद्धि को सुन— जिस बुद्धि से युक्त होकर हे पार्थ तू कर्म-बन्धन त्याग देगा ॥39॥ इस योग में प्रयास का नाश नही है न विपरीत परिणाम है। इस धर्मरूप कर्तव्य का थोड़ा-सा भी (प्रयास कर्मबन्धन के-) महान् भय से रक्षा कर लेता है ॥40॥

भाषा— श्लोक 39 के द्वारा आचार्य शङ्कर अपने श्रोता से यह कह रहे हैं कि तुमने साङ्ख्य के बारे में सुन लिया अब योग के बारे में सुनो जिससे युक्त होकर तुम कर्मबन्धन को छोड़ दोगे। इस श्लोक से पूर्व साङ्ख्य के बारे में उस पुरातन संस्मरण को दिखाया गया जब 8वीं सदी में मो. बिन-कासिम व द्रोही-स्वजनों के विरुद्ध कपिल ने लोगों को युद्ध के लिए प्रेरित किया था। इसलिए कहा है कि यह तो तुझे साङ्ख्य के बारे में बताया गया अब आगे योग के बारे में सुन। यहाँ साङ्ख्य की बात समाप्त कर दी गई और अब भूमिका आ गई है 12-13वीं सदी में। क्योंकि इस द्वितीय चरण में सूफी-मत के द्वारा भारत में परधर्म का प्रचार करके लोगों का धर्मांतरण किया जा रहा था। इसलिए यहाँ से भूमिका 12-13वीं सदी की उस घटना के बारे में बताती है जब सूफी-भक्ति द्वारा धर्मांतरण हो रहा था जिसके कर्म-बन्धन से मुक्त होने के लिए पुन: आद्य-प्रणेता के योग का आश्रय करने को कहा गया।

यह श्लोक द्वैत-कथनीय हैं। एक तरफ इनमें शङ्कर अपने श्रोता को जानकारी दे रहे हैं तो दूसरी ओर आद्य-प्रणेता के योग से यह भी कहा जा रहा है कि बुद्धि से युक्त होकर कार्य करो जिससे परधर्म के कर्मबन्धन से मुक्ति मिले। लेकिन इस जानकारी का यहाँ उल्लेख नही किया गया है बल्कि विषय को आगे ले जाया गया है।

गीता के इस श्लोक ने स्पष्ट कह दिया कि युद्ध-प्रेरणा की यह **बुद्धिः**—'जानकारी' साङ्ख्य के बारे में कही गई जो कपिल के युद्ध-उपदेशों पर आधारित है। इसलिए गीता युद्ध प्रेरणा का ग्रन्थ नही है बल्कि यह वह जानकरी देता है कि किसने क्या कहा था और किस समय क्या हुआ था? गीता में युद्ध सम्बन्धी जो पूर्वोक्त श्लोक कहे हैं उन्हें अवशेष या संस्मरण के रूप में याद किया गया है जो इसके योग-विषय से भिन्न हैं। हालाँकि सिन्ध विजय के बाद कासिम ने धर्मांतरण कराना शुरु कर दिया जो शुरु में जबरन् हुआ था लेकिन जल्द ही उसे जनसामान्य ने अपना आश्रय बना लिया और वे तेजी से धर्मांतरित होने लगे क्योंकि जनसामान्य ऐसा करके अपने को शोषित व्यवस्था से मुक्त होने का भविष्य देखने लगे थे कि परधर्म में जाकर हमारा ऐसा शोषण नही होगा जैसा हमारे शासक हमारा शोषण करते आए हैं। इसलिए सिन्ध में कासिम का धर्मांतरण तलवार की नोंक पर कराया हुआ नही कहा जा सकता बल्कि उससे ज्यादा धर्मांतरण लोगों की स्वेच्छया से हुआ था। लेकिन जिस प्रकार से लोग धर्मांतरित हो रहे थे उस भयावह स्थिति को देखकर बरमक भी चिन्तित हो गया कि कहीं यहाँ कि स्थिति भी पश्चिम व मध्य-एसिया की तरह न हो जाए। इसलिए उसने तब इस भूमि को बचाने के लिए ज्ञानरूप में योग की क्रान्ति शुरु की। सबसे पहले उसने यहाँ के शासन-सम्बन्धी लोगों का परधर्म के परिणाम से सचेत किया और यह भी समझाया कि जनसामान्य इसलिए धर्मांतरण कर रहा है क्योंकि वह यहाँ के शासनों से पीड़ित है जिन्हें धर्मांतरण से रोकने के लिए उनके साथ परस्परता बरतनी होगी अन्यथा यदि सारे लोग धर्मांतरित हो गये तो तुम सबके लोक पतन में चले जाएँगे। इसलिए जनसामान्य के प्रति सबसे पहले अपने शासन की कर्म-व्यवस्था सही करो और कर्म के नाम पर जनता

का शोषण मत होने दो तो साथ ही लोगों को समझाने के लिए ऐसे बुद्धिमानजन भी तैयार करने होंगे जो जगह-जगह जाकर लोगों को परधर्म से सचेत करें और उन्हें वापस अपने लोक-समाज में लाएँ। तभी परधर्म से मुक्ति मिल सकती है अन्यथा.....। (पृष्ठ-132-134)

अध्याय-3

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥३.३५

अर्थ— "मन-घड़न्त परधर्म से विगुण स्वधर्म श्रेष्ठ है। स्वधर्म में निधन श्रेष्ठ है— परधर्म भयावह है ॥35॥" आत्मा

भाषा— इसका विस्तार 18.41-48 में दिया है। अभी तक हम परधर्म की बात को अनावश्यक जान रहे होंगे लेकिन इस श्लोक में रचनाकार ने **परधर्म** के साक्षात् दर्शन करा दिए जिसके बारे में श्लोक स्पष्ट कहता है कि **स्वनुष्ठितात्**—'मन-घड़न्त'[13] परधर्म से **विगुणः**—'परधर्म के गुण-कर्मों से रहित' अपना धर्म अर्थात् अपना कर्तव्य करना श्रेष्ठ है। अपने धर्म में **निधनम्**—'अन्त तक जीना या जीना-मरना अर्थात् अन्त तक कर्तव्य करना' श्रेष्ठ है। परधर्म तो लोक के लिए भयङ्कर या डरावना है। यहाँ मन-घड़न्त परधर्म की सत्यता बताई गई है कि ऐसे धर्म से अपना धर्म अच्छा है जो इसके जैसे गुणों से रहित है। इसके बारे में आद्य-प्रणेता बरमक से अच्छा यहाँ और कोई नही जानता था। इसीलिये वह लोगों को सदैव इससे सचेत करता रहा क्योंकि जन-सामान्य इससे अवगत नही था।

परधर्म में धर्मांतरण के कारण को जताते हुए रचनाकार ने अगला श्लोक इस प्रश्न के साथ बद्ध किया है—

॥अर्जुन उवाच॥
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३.३६

13- इस्लाम उदय के दौरान वहाँ अन्य मतों के भी ऐसे लोग थे जो क़ुरआन व आयतों को मन-घड़न्त कहते थे और इस्लामवाले उनपर जबरन् अपना धर्म थोपना चाहते थे इसलिए अन्य मत के लोग आयतों आदि पर विश्वास नही करते थे जैसे— *"और हमने तुम्हारी ओर खुली-खुली आयतें उतारी हैं और उनका इनकार तो बस वही लोग करते हैं, जो उल्लंघनकारी हैं"*-2.99। *"और उससे बढ़कर अत्याचारी कौन होगा, जो अल्लाह पर झूठ गढ़े या उसकी आयतों को झुठलाये"*-2.21। या वे कहते हैं: *"इस व्यक्ति (पैगम्बर) ने उसे स्वयं ही घड़ लिया है?"*-10.38। *जिन लोगों ने इनकार किया उनका कहना है: "यह तो बस मनघडंत है जो उसने स्वयं ही घड़ लिया है। और कुछ दूसरे लोगों ने इस काम में उसकी सहायता की है।"*-25.4 *या वे कहते हैं: "उसने उस (क़ुरआन) को स्वयं ही कह लिया है?"*-52.33।

अर्थ— फिर यह पूरुष न चाहते हुए भी जबरन् नियोजित की तरह हे वार्ष्णेय किससे प्रेरित होकर पाप करता है? ॥36॥

भाषा— प्रश्न सीधा है कि किससे प्रेरित होकर लोग परधर्म में जाने का पाप करते हैं? जैसे कि उन्हें इसमें जबरन् नियोजित किया जा रहा हो। यह प्रश्न उशना कवि ने आचार्य शङ्कर से किया है। इसके उत्तर में उन्होंने 37-41 तक के श्लोक भी आद्य-प्रणेता के कथनों द्वारा श्लोकबद्ध करवाये हैं— (पृष्ठ-167-168)

अध्याय-4

॥श्रीभगवानुवाच॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥४.५
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥४.६
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥४.७
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥४.८

अर्थ— मेरे और तेरे हे अर्जुन बहुत-से जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबको जानता हूँ हे परन्तप तू नही जानता ॥5॥ मैं लोगों के लिये अज-अव्यय पुरुष भी होते हुए (एवं-) ईश्वर भी होते हुए अपनी प्रकृति को स्वीकार करके (उनकी रक्षा के लिए-) आत्ममाय से सामने आता हूँ ॥6॥ क्योंकि हे भारत जब-जब धर्म की ग्लानि व अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने आप को सामने लाता हूँ ॥7॥ साधुजनों की रक्षा के लिये दुष्कर्मियों का विनाश करने के लिये और धर्म की (सही स्थिति-) स्थापित करने के लिये मैं समय-समय पर सामने आता रहता हूँ ॥8॥

भाषा— इन उत्तरों में भी द्वैत-भाव है। इसलिए इन अप्रत्यक्ष श्लोकों की टीका के लिए उत्तम पुरुष का एकवचन 'मैं या मेरे' बहुवचन 'हम या हमारे' में बदला जाएगा तभी इन श्लोकों की और गीतासङ्घ की परम्परा समझ आएगी। अत: *'मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं'*— का तात्पर्य है कि हम गीतासङ्घ के अध्यक्षों की समय समय पर सतत् नियुक्ति होती रही है। वहीं तुम समान श्रोताओं को भी अपनी परम्परा बताने के लिए हमारे पास पात्र रहे हैं। इसलिए हम अपनी परम्परा से सब कुछ जानते हैं। लेकिन तुम इस समय के श्रोता हो इसलिए तुम यह सब नही जानते लेकिन अब हम तुम्हें यह सब बताते हैं। यह बातें संवाद रचना को आधार देने के लिए कही हैं....। यह सब हम कैसे जानते हैं इसे बताते हुए कहा है कि एक तो हम लोगों के लिए **अज: अव्ययात्मा**—'अज-अव्यय पुरुष'

की तरह भी तो दूसरा हम उनके लिए मार्गदर्शी **ईश्वर:**—'स्वामी' भी बने रहे हैं इसलिए हम अपने **प्रकृतिम्**—'दायित्व आदि भाव को' समझकर **आत्ममायया**—'अपने ज्ञान सामर्थ्य से' पीड़ित लोगों की रक्षा के लिये सामने आते हैं। क्योंकि यहाँ जब भी क्रुर या दु:शासन व साङ्ख्यकर्म-व्यवस्था से और परधर्म से **धर्मस्य**—'लोक-समाज के कर्तव्य आदि मर्यादाओं की' हानि हुई है और उनका अधर्म बढ़ा है तब-तब हम अपने को सामने लाये हैं जिससे लोक-व्यवस्था को संरक्षित किया जाता रहे। इस प्रकार हम उस असहाय **साधूनाम्**—'जनसामान्य जो पीड़ित उपेक्षित शोषित और अज्ञान-मोह से अपहृत है— की' रक्षा के लिए और ज्ञान से दोनों प्रकार के दुष्टों का खात्मा करने के लिए तथा धर्मरूप में लोक-व्यवस्था के कर्तव्य-कार्यों को सही प्रकार से स्थापित करने के लिए समय समय पर सामने आते रहते हैं ताकि यह लोक-व्यवस्था दु:शासनों और सिद्धों द्वारा शोषणकारी न बनी रहे तो वहीं यह परधर्म से भी अन्य बाहरी देशों की तरह नष्ट-भ्रष्ट न हो जाये— उससे भी बचाते हैं। **दुष्कृताम** शब्द में दोनों ही प्रकार के लोग हैं परधर्मी और यहाँ के क्रुर शासक व सिद्ध आदि।

श्लोक 8 ऐसे ही नही रचा गया बल्कि आचार्य शङ्कर ने इसे बड़ा ही सोच-समझकर रचवाया है। एक ओर कहा जाता है कि जब भी अधर्म बढ़ता है तब-तब हमारे भगवान् आते हैं दूसरी ओर कहा जाता है कि अधर्म तो बढ़ रहा है फिर भगवान् क्यों नही आते? लेकिन यह दोनों ही बातें ना-समझ रूप में हैं। श्लोक में जो बात कही है वह बिलकुल सच है क्योंकि जबतक गीतासङ्ग का प्रभाव रहा तब-तब उसने समय समय पर भगवान् रूप में रक्षक बुलाये जिन्होंने अधर्म व दुष्टों का विनाश किया और लोगों की रक्षा के लिए धर्म को स्थापना की। यह सच गीतासङ्ग के काल का है और शङ्कर से पूर्व इस सम्बन्ध में तीन प्रमुख घटनाएँ घट चुकी थी जिसमें पहली घटना तो स्वयं बरमक के आगमन की थी। जबकि दो घटनाओं को हम अध्याय 11 में देखेंगे कि भगवान् रक्षक रूप में कैसे आये? यही प्रमाण देने के लिए शङ्कर ने उक्त श्लोक रचवाया। (पृष्ठ-174-176)

अध्याय-5

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥५.१४
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥५.१५
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥५.१६
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥५.१७ —3

अर्थ— "**प्रभु लोक के न कर्तापन को न कर्मों को (और-) न कर्मफल-संयोग को रचता है— किन्तु स्वभाव प्रवर्त हो रहा है ॥ विभु न किसी के पापकर्म को ग्रहण करता है और नाहीं (किसी के-) शुभकर्म को। अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है— उससे लोग मोहित हो रहे हैं ॥14-15॥**" [आत्मा] **लेकिन जिनका वह अज्ञान आत्मा के ज्ञान से नष्ट हो गया है। उनका (वह-) ज्ञान सूर्य के समान उस आत्मा को प्रकाशित करता है ॥16॥ उस आत्मा में मनवाले उस आत्मा में बुद्धिवाले उस आत्मा में निष्ठावाले (और-) उस आत्मा के परायण रहनेवाले लोग (उनके-) ज्ञान से पापरहित होकर अपुनरावृत्ति को प्राप्त होते हैं ॥17॥** [शङ्करभाष्य]

भाषा— यह अध्याय श्लोक 14 से शुरु होता है जिसकी शुरुआत परधर्म प्रभु से की है क्योंकि वह प्रभु ही उस धर्म व उनके लोगों के लिए सर्वोपरि माना गया है। **सलमान रुश्दी** ने एक सच कहा कि—*"इनसान ने हमेशा से ही अनुचित बातों को सही ठहराने के लिए ईश्वर का इस्तेमाल किया है।"* उस समय भी कुछ ऐसा ही प्रभु का प्रयोग किया गया था।

परधर्म वाहकों का मानना है कि उनका प्रभु ही लोक का कर्ता-धर्ता है उसी ने लोक के लिए कर्म बनाये हैं और उसी ने लोगों के लिए कर्मफल का संयोग रचा है जिसका फल आख़िरात या जन्नत के रूप में प्राप्त होगा। वह विभु उन सब लोगों के पापों और शुभकर्मों को ग्रहण करता है जो उसके अनुसार कर्म करता है। उसके नाम से यह सब बातें परधर्मग्रन्थ में दी गई हैं। इन बातों का खण्डन करते हुए रचनाकार ने आद्य-पुरुष के कथन दिये हैं कि परधर्मप्रभु न लोक के कर्तापन को न कर्मों को और न कर्मफलसंयोग को बनाता है किन्तु परधर्मप्रभु के नाम पर जो **स्वभावः**—'अहङ्कार यानि सबकुछ मैं ही हूँ वाला आत्मभाव' है वह लोगों को कर्म आदि के प्रति प्रेरित कर रहा है। वह विभु किसी के पाप और पुण्य को ग्रहण नही करता है बल्कि उस बारे में जो भ्रम फैला है उस अज्ञान से लोगों की मति मारी गई है जिससे वह उसकी ओर मोहित हो रहे हैं। चूँकि कोई प्रभु कैसे लोक आदि के लिए नियम बना सकता है और कैसे किसी के पाप-पुण्य को ग्रहण कर सकता है? आद्य-प्रणेता के कथनों पर टीका करते हुए कहा है कि जिन लोगों ने परधर्म-सम्बन्धी ऐसे समस्त अज्ञान को **आत्मनः**—'आद्य-पुरुष' के ज्ञान से नष्ट कर दिया है वह उन्हें भलीभाँति समझ गया है इसलिए वह फिर सूर्य के समान **तत्परम्**—'आद्य-पुरुष के ज्ञान को' प्रकाशित या प्रचारित करता है न कि परधर्म और उसके प्रभु को। उस आद्य-प्रणेता के प्रति मन बुद्धि व निष्ठावाले और उसके ज्ञान के प्रति परायण रहनेवाले जो लोग हैं वह उसके ज्ञान द्वारा परधर्मरूपी पाप से रहित होकर उसकी ओर पुनरावृत्ति नही करते। **अपुनरावृत्तिम्** का अर्थ है अपने लोक-समाज को छोड़कर परधर्म में जाने की आवृत्ति न करना अर्थात् अपने लोक-समाज को छोड़कर दूसरे धर्म में न जाना। गीता की भूमिका 3.35 में कह ही दिया है कि **श्रेयान् स्वधर्मः विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्**।

क़ुरआन 30.11 में कहा है—*"अल्लाह ही सृष्टि का आरम्भ करता है। फिर वही उसकी पुनरावृति करता है। फिर उसी की ओर तुम पलटोगे।"*

बुद्धचरित 18.20 में कहा है—*"यदि ईश्वर संसारको पैदा करता तो, इसमें व्यवस्थित कार्यपद्धति नही होती और लोग भव-चक्रमें नहीं भटकते; जो जिस किसी योनिमें जन्म लेता वह वहीं रहता।"* (पृष्ठ-196-197)

अध्याय-7

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥७.२०
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥७.२१
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्या राधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥७.२२
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥७.२३ —4

अर्थ— "उन-उन कामनाओं द्वारा अपहृत ज्ञानवाले लोग अपनी (लोभ-) प्रकृति से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं की शरण करते हैं ॥20॥ (अपने धर्मांतरण के लिये-) जो-जो भक्त जिस-जिस देवता को श्रद्धा से पूजना चाहता है उस-उस भक्त की अचल-श्रद्धा मैं उस देवता के प्रति ही छोड़ देता हूँ ॥21॥ उस श्रद्धा से युक्त हुआ वह भक्त उस देवता का पूजन करता है और मेरे द्वारा विहित की गई उन कामनाओं को ही उस देवता से निःसन्देह प्राप्त करता है ॥22॥ किन्तु उन अल्पबुद्धिवालों का वह फल नाशवान् है। यद्यपि देवयज देवों को प्राप्त होते हैं (लेकिन-) मेरे भक्त मुझे पाते हैं ॥23॥"
आत्मा ✌

भाषा— इन श्लोकों का भाव यह है कि आख़िरातरूप जन्नत में प्राप्त होनेवाली काम-भोग आदि कामनाओं द्वारा जिन लोगों की मति मारी गई है वे लोग अपनी लोभ प्रकृति से प्रेरित होकर उन कर्म आदि नियमों का पालन करते हैं जो उन्हें कामनाओं की प्राप्ति के लिए बताये जाते हैं और फिर वे अन्य देवताओं अर्थात् उन लोगों की शरण करते हैं जो उनका धर्मांतरण करा सकें क्योंकि इसके लिए धर्मांतरण जरूरी है। यहाँ के जिन तमाम लोगों ने परधर्म ग्रहण कर लिया था उनमें से कुछ लोग दूसरों का धर्मांतरण कराने के लिये प्रमुख ऐजन्ट बन जाते थे। यहाँ के ऐसे ही धर्मांतरित प्रमुख ऐजन्टों को **अन्यदेवताः** कहा गया है। अतएव अन्यदेवता के रूप में ऐसे ऐजन्ट भी धर्मांतरण कराने के कारण पूजनीय हो गये हैं। इसलिए कहा है कि अपने धर्मांतरण के लिये यहाँ का जनसामान्य इन देवतारूप ऐजन्टों का भक्त बनकर इन्हें श्रद्धा से पूजता हैं और जो उनके प्रति अचल-श्रद्धा

रखते हैं उन लोगों को समझाया नही जा सकता जिन्हें उन्हीं देवताओं के प्रति छोड़ना पड़ता है। **अचलाम् श्रद्धाम्** का अर्थ है—'अन्धश्रद्धा' जो समझाने से भी न समझे क्योंकि अचलश्रद्धा अन्धश्रद्धा ही होती है। उस अन्धश्रद्धा से युक्त होकर ही वह अन्धभक्त उस ऐजन्ट देवता का पूजन करता है कि वह हमारा भी धर्मांतरण कराए। ऐसे लोगों को हिदायत देते हुए कहा गया कि मैंने जिन कामनाओं के विरुद्ध निर्देश दिया था कि उन कामनाओं की आशा मत करना फिर भी लोग उनके लिए ऐजन्टों से नि:सन्देह उनकी प्राप्ति के लिये याचना करते हैं जिसके लिए धर्मांतरण प्राथमिकता है। जबकि ये नासमझ लोग यह नही समझते कि वह जिन कामनाओं के पीछे भाग रहे हैं वह सब व्यर्थ और नाशवान् हैं जो नित्य नहीं। **देवान्देवयजो यान्ति** का यही तात्पर्य है कि जो लोग धर्मांतरित होकर प्रमुख ऐजन्ट बन गये हैं उन्हें 'देवान्' कहा है और जो उन देवों से अपना धर्मांतरण कराना चाहते हैं वह उनके प्रति 'देवयज:' कहे गये हैं। इसलिये धर्मांतरण चाहनेवाले अन्य जनसामान्य धर्मांतरित हुए इन देव लोगों का अनुसरण करते हैं लेकिन जो मुझ आद्य-पुरुष को मानते हैं वह मेरी शरण करते हैं। देव सञ्ज्ञा यहाँ के जनसामान्य आदि लोगों के लिये प्रयुक्त है।

यह कथन भी आद्य-प्रणेता से अधिक आचार्य शङ्कर के समय में ज्यादा व्यवहारिक दिखाई देते हैं जिन्हें कहा तो आद्य-प्रणेता के समय को मानकर है लेकिन हैं ये शङ्कर के समय के। इसके विपरीत कहा है कि—

बोध— महाविद्वान् विचारे कि 'उन-उन कामनाओं द्वारा' जैसे अधूरे साङ्केतिक वाक्य से भगवान् किन कामनाओं की बात कर रहे हैं? (पृष्ठ-229-231)

अध्याय-9

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥९.३०
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥९.३१
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥९.३२
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥९.३३

अर्थ— "यदि सुदुराचारी भी अनन्यभाव होकर मुझे भजता है (तो-) वह साधु ही माननेयोग्य है क्योंकि वह अच्छी तरह (मानवता के लिए-) व्यवस्थित है ॥30॥ वह जल्द धर्मात्मा हो जाता है (और-) स्थायी शान्ति को प्राप्त होता है। (अत:-) हे कौन्तेय तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त नष्ट नही होता ॥31॥ क्योंकि हे पार्थ जो भी पापयोनि—'स्त्री वैश्य तथा शूद्र' हों वे भी मुझे शरण कर परमगति को प्राप्त होते हैं ॥32॥ फिर पुण्यवान् ब्राह्मण तथा राजर्षि

भक्त का क्या (-कहना जो मेरी शरण हैं)। (अत:-) इस सुखरहित व अनित्य लोक को पाकर तू मुझे भज ॥33॥" आत्मा

भाषा— सुदुराचार: यहाँ के उन शासक-सिद्ध आदि लोगों को कहा है जो प्रजा के प्रति बहुत ही क्रुरकर्मा और दुराचारी थे। यदि ऐसे अतिदुराचारी भी पूर्ण समर्पित भाव से मुझे भजे तो फिर उन्हें भी सभ्यजन मानना चाहिए क्योंकि तब वह भी मेरी तरह मानवता के प्रति व्यवस्थित हो जाएँगे और मेरे ज्ञानानुसार जल्द धर्मात्मा होंगे तथा अपनी दुराचार प्रवृत्तियों को छोड़ लोक-समाज के लिए स्थायी शान्ति प्राप्त करेंगे अर्थात् लोक-समाज को समभाव से शान्तिप्रिय बनाएँगे। इसलिए तुमलोग यह भलीभाँति समझ लो कि मेरा अनुसरण करनेवाला कभी भी अपने ही लोक-समाज के प्रति अमानवीय कुकृत्य करके अपने या अपने लोक-समाज को नष्ट नही करता। उक्त श्लोक तो यहाँ के दुराचारी शासकीय आदि लोगों के लिए कहे गए लेकिन अगला श्लोक यहाँ के उस जनसामान्य के प्रति प्रत्यक्ष ही कहा गया जिन्होंने धर्मांतरण कर लिया था कि जो भी पापयोनि स्त्री वैश्य और शूद्र हैं जिन्होंने कि पाप-स्रोत के रूप में परधर्म ग्रहण कर लिया है और ऐसा करके वह पापयोनिवाले हो गये तो वह भी मुझे शरण कर परधर्म से मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। जबकि उन लोगों के बारे में तो कुछ कहा ही नही जा सकता जो ज्ञानरूप में मेरा पालन करनेवाले पुण्यवान् ज्ञानी ब्राह्मण है जिन्हें कि दूसरों का मार्ग-दर्शन करने के लिए मैंने तैयार किया है और राजर्षि भक्तरूप में वह सिद्धजन भी जिन्होंने मेरा अनुसरण कर धर्मांतरण जैसा पाप नही किया। इसलिए जिन लोगों ने इस सुखरहित और अनित्य **लोकम्**—'परधर्म जगत् को' अपना रखा है उससे मुक्ति के लिए वह मेरी शरण करें और मेरे ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करें। (पृष्ठ-265-258)

अध्याय-10

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ १०.४१*
अथ वा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ १०.४२ —5

अर्थ— (इनमें-) जो-जो सत्त्व विभूतियुक्त श्रीयुक्त अथवा शक्तियुक्त ही है उस-उस को ही तू मेरे ज्ञान-अंश से व्यक्त जान ॥41॥ अथवा इस (बारे में-) बहुत जानने से हे अर्जुन तुझे क्या? (आद्य-पुरुष बरमक के-) इस सम्पूर्ण जगत् को मैं (भी-) एक अंशरूप से धारण करके स्थित हूँ ॥42॥ आचार्य शङ्कर

भाषा— ऊपर जो विभूति और योग कहा गया है उनमें से उसी को सत्त्व समझो जो विभूतियुक्त श्रीयुक्त और शक्तियुक्त है और उसको भी तुम मेरे थोड़े-से ज्ञान से अभिव्यक्त जानो। अर्थात् इस जानकारी को मैं भी अपने लिये अंशभर ही समझता हूँ क्योंकि आद्य-

प्रणेता के बारे में तो बहुत-सी जानकारी है इसलिए जितना वर्णन सत्त्वरूप में उचित था उतना मैंने कर दिया है। अथवा इससे ज्यादा और क्या जानना? मैं स्वयं भी आद्य-प्रणेता से सम्बन्धित इस सम्पूर्ण **जगत्**—'विभूति व योग को' मानो अंशभर ज्ञान से जानकर स्थित हूँ अर्थात् मैं भी इसके बारे में अंशभर ज्ञान रखता हूँ। यह कहकर आचार्य शङ्कर ने भी इस सम्पूर्ण जानकारी के प्रति अपने को लघु-ज्ञानी ही माना है। जिसे उन्होंने अपने इस उपसंहार रूप में व्यक्त कर दिया है॥ (पृष्ठ-274)

अध्याय-11

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो; लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे; येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥ ११.३२*
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व; जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव; निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ११.३३
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च; कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा; युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥ ११.३४ —5

अर्थ— "लोकों का नाश करनेवाला आगे आया हुआ मैं काल हूँ। इस समय इन लोकों को संहार करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। विपक्षी शत्रुओं की सेना में स्थित जो योद्धा हैं (वे-) सब तेरे बिना भी नही बचेंगे ॥32॥ इसलिये तू उठ! यश प्राप्त कर! शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य को भोग! ये सब शत्रु पहले ही मैंने मार दिए हैं। तू (-तो) हे सव्यसाचिन् निमित्त-मात्र बन जा ॥33॥ मेरे द्वारा मारे गए द्रोण और भीष्म और जयद्रथ और कर्ण तथा (बचे हुए-) योद्धा-वीर शत्रुओं को (मेरे साथ-) तू भी मार। भय मत कर। युद्ध कर। रण में तू शत्रुओं को जीतेगा ॥34॥" मो. गौरी

भाषा— उक्त श्लोकों के स्पष्ट कथनों को हम समझ सकते हैं कि इनमें क्या कहा जा रहा है? गौरी की ओर से उत्तर दिया गया है कि मैं यहाँ इन दु:शासन शासकों के **लोकक्षयकृत्**—'शासनों का नाश करनेवाला' मृत्यु-काल हूँ जिनसे तुम शोषितों की रक्षा हेतु **प्रवृद्धः**—'आगे आया हुआ' हूँ और इस समय मैं यहाँ इन शासनों का विनाश करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। यही मेरा उद्देश्य है। शासक आदि के रूप में तुम लोगों के जो भी शत्रु हैं वह सब तुम्हारे सहयोग बिना भी जीवित नही बचेंगे। इसलिए तुम उठो अपने को स्वतन्त्र समझो और जीवन का यश प्राप्त करो और मेरे साथ शत्रुओं को जीतकर तुम इस समृद्ध राज्य का भोग करो। तुम्हारे लगभग सारे शत्रु तो मैंने पहले ही मार दिये हैं जो कि तुम्हारे लिए ही मारे गये हैं क्योंकि तुम इस कार्य निमित्त कारण बने हो। जैसे द्रोण भीष्म जयद्रथ और कर्ण आदि शत्रु मैंने मारे हैं वैसे ही बचे हुए जो अन्य योद्धा-वीर शत्रु हैं उन्हें तुम भी मेरे साथ मारो डरो मत इनसे युद्ध करो युद्ध में तुम इन शत्रुओं को जीतोगे। (पृष्ठ-318)

अध्याय-14

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते॥ १४.१४
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥ १४.१५
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥ १४.१६
सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ १४.१७
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ १४.१८* —2

अर्थ— सत्त्व के बढ़ने पर जब मनुष्य प्रलय को प्राप्त होता है तब तो (वह-) उत्तमविदों के निर्मल लोकों को प्राप्त होता है ॥14॥ रज बढ़ने पर प्रलय को प्राप्त होकर मनुष्य (काम-) कर्मों की आसक्तिवाले लोगों में उत्पन्न होता है तथा तम बढ़ने पर वह प्रलीन हुआ मनुष्य मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है ॥15॥ सुकृत-कर्म का फल सात्त्विक निर्मल कहा है तो रजकर्म का फल दु:ख (और-) तमकर्म का फल अज्ञान ॥16॥ सत्त्व से (स्वार्थजन्य-) ज्ञान साथ ही रज से (कामासक्ति का-) लोभ उत्पन्न होता है। तम से अज्ञान साथ ही प्रमाद व मोह उत्पन्न होते हैं ॥17॥ सत्त्व में स्थित लोग ऊर्ध्व जाते हैं। रज में स्थित लोग बीच में रहते हैं। जघन्य-गुणवृत्तियों में स्थित तामस लोग अध को प्राप्त होते हैं ॥18॥ शङ्करभाष्य

भाषा— जब इन्सान सत्त्वगुणरूप में प्रेरित होकर परधर्मरूपी प्रलय को प्राप्त करता है तब तो वह समझता है कि मैंने उत्तम जानकारों के निर्मल **लोकान्**—'सङ्गतों को' प्राप्त कर लिया है। जब इन्सान रजगुणरूप में प्रेरित होकर प्रलय को प्राप्त होता है तो वह काम-वासना की प्राप्ति के लिये कामासक्तिवाले कर्मों को करनेवाला होता है और तमगुणरूप से प्रेरित होनेपर इन्सान उन मूढ़-अमानवीय लोगों के योनिरूप स्रोत-कार्यों को करनेवाला होता है जो प्रलीनरूप बहुत ही जघन्य हिंसक अमानवीय और असामाजिक आदि कृत्यों में डूबा हुआ या लिप्त है। **प्रलीन:** का अर्थ है विविध प्रकार के जघन्य कार्यों को करने में डूबा या लगा हुआ। वहाँ सुकृत कर्म के फल को तो उस रूप में निर्मल समझ लो जो लुभावने के लिए है और रज के फल को तृष्णारूपी दु:ख समझ लो जिसकी प्राप्ति कभी नही होनी तो तम के फल को अन्धकार समझ लो जिसके द्वारा इन्सान जघन्य कार्य करता है। सत्त्वगुणरूप में परधर्म अपने लिए स्वार्थजन्य ज्ञान का मोह पैदा करता है तो रजगुणरूप में परधर्म जन्नतीय काम-भोग के प्रति कर्मों का लोभ पैदा करता और तमगुणरूप में परधर्म अज्ञानरूप जघन्य कार्यों के प्रति प्रमाद व मोह उत्पन्न करता है। सत्त्व में स्थित या सत्त्ववाली

सोच के इन्सान को ऊपर समझ लो तो रज में स्थित या रज सोचवाले लोग अधर में लटके रह जाते हैं जिन्हें कभी उन जन्नतीय भोगों की प्राप्ति नही होनेवाली जो कही गई हैं तभी तो रज का रागात्मक कहा है कि यह अपने आप में तृष्णा का राग है और राग ही रह जाएगा और जघन्य कार्यों में स्थित लोगों को **अधः**—'नीचता' में स्थित समझ लो जो जघन्य आदि कर्मों में ही लगा रहता है।

सत्त्व-रज-तम का क्रम एक ऐसी तराजू के रूप में है जिसके दो पलड़ों में से एक में सत्त्व और दूसरे में तम है और रज उस तराजू का पकड़नेवाला हत्था है जो बीच में है। इस तराजू के सत्त्व और तम के पलड़े ही कार्य करते हैं रजरूपी हत्थे को तो पकड़ के बैठे रहना है क्योंकि उसके रूप में जन्नतीय भोग कभी नही मिलनेवाले हैं। इसलिए रज को बीच में रखा है। (पृष्ठ-375-376)

अध्याय-15

॥श्रीभगवानुवाच॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ १५.१
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा; गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि; कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥ १५.२
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते; नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल; मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥ १५.३

अर्थ— **"ऊर्ध्वमूलवाले (और-) अध:शाखावाले अश्वत्थ को अव्यय-रूप कहते हैं। छन्द जिसके पर्ण (-कहे गये हैं)। उसे जो जानता है वह (उसका-) जानकार है ॥1॥ त्रिगुणों से बढ़ी हुई विषय-प्रवालवाली उसकी शाखाएँ उर्ध्व और अध को फैली हुई हैं और कर्मों के अनुसार बाँधनेवाली जड़ें नीचे मनुष्यलोक में फैल रही हैं ॥2॥ इस अश्वत्थ का रूप (-जैसा बताया गया है) वैसा यहाँ उपलब्ध नही होता (क्योंकि इसका-) न आदि है और न अन्त है और न अच्छी तरह से प्रतिष्ठा है। (इसलिए-) अतिदृढ मूलोंवाले इस अश्वत्थ को दृढ अनासक्त-शस्त्र से काटकर—॥3॥**[14] " - ?

14- अल-बेरूनी के ग्रन्थ में उपरोक्त श्लोकों से मिलते-जुलते कुछ पद इस प्रकार मिलते हैं—*"इस वृक्ष की ऊपर की जड़ें ब्राह्मण हैं। वेद इसका तना हैं। इसकी शाखाएँ भिन्न भिन्न सिद्धान्त और दर्शन हैं। इसके पत्ते अर्थ लगाने की भिन्न भिन्न शैलियाँ हैं। इसका आहार तीन गुण हैं। इन्द्रियों के द्वारा यह वृक्ष सुदृढ़ और मोटा होता है। ज्ञानी पुरुष की यही आकाङ्क्षा रहती है कि इस वृक्ष का उखाड़ दे, अर्थात् संसार और उसके मिथ्या आडम्बरों से बचा रहे। जब वह इसे उखाड़ डालता है तो फिर जिस स्थान में उगा हुआ था, जिस स्थान में कि आगामी पुनर्जन्म से लौट कर नहीं आना, उस स्थान में आप निवास करने लगता है। ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाने पर वह गरमी सरदी के दुःखों को अपने*

नोट—इन श्लोकों से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व (पूना संस्करण अ.-246 कुम्भकोण सं. अ.-260 और नीलकण्ठ सं. अ.-254) में भी देखा जा सकता है।

भाषा— गहन तात्पर्यवाले इन श्लोकों में किसी अलौकिक वृक्ष की बात नही हो रही है बल्कि इनमें परधर्म की अश्वत्थ स्थिति को अव्यय के रूप में बताया है। ऊपरी बाहरी या विदेशी मूल के धर्म को **ऊर्ध्वमूलम्** कहा है जिसकी जड़ें तो ऊर्ध्व-भूमि पर अङ्कुरित हुईं लेकिन उसकी शाखाएँ नीचे अर्थात् अन्य क्षेत्रों देशों और भारत में भी फैली या फैलाई गईं जिन्हें **अध:शाखम्** कहा है। विदेशी मूल के इस धर्म को ज्ञानियों ने अन्धकार रूप में देख उसे **अश्वत्थ** कहा जो अपनी स्थिति में इतना मजबूत था कि उसे प्रत्यक्ष युद्ध आदि से हरा पाना मुश्किल था इसलिये उसे **अव्यय** रूप में कहा गया। अश्वत्थ उसे इसलिये कहा क्योंकि अश्वत्थ का तात्पर्य 'कल का अन्धकार' या 'दुर्भाग्य' होता है चूँकि 'अश्वत्थ' 'श्वस्' शब्द का विपरीत है जिसका अर्थ होता है— 'आनेवाला कल या कल का भविष्य' लेकिन श्वस् में 'अ' लगकर वह 'अश्वत्थ' हो गया और इसका अर्थ हुआ— 'जिसका कल न हो यानी आनेवाले कल का अन्धकार या भविष्यहीन'। 'श्वस्' का एक अर्थ 'सौभाग्य' भी है तो उस प्रकार 'अश्वत्थ' का अर्थ हुआ 'दुर्भाग्य'। यहाँ 'अश्वत्थ' के दोनों में से कोई भी अर्थ किये जा सकते हैं। इसलिए रचनाकार ने उस 'भविष्य के अन्धकार' या 'दुर्भाग्य' को अव्यय कहा कि ऐसा दुर्भाग्य भी अविनाशी है। यह धर्म मुख्य रूप से अपने धर्मग्रन्थ द्वारा संचालित होता है जो आयतों का सङ्ग्रह है और क़ुरआन के वाक्यांश या वाक्य को ही *आयत पर्ण पत्र* व *क़िताब* आदि कहते हैं। क़ुरआन की परिभाषिक शब्दावाली में *क़ुरआन* को *पर्ण पत्र क़िताब पट्टिका* और *ज़बूर* कहा है। इसलिए श्लोक में जिसे **छन्दांसि** कहा है उसका तात्पर्य आयतों या पर्ण आदि से है कि जिसके छन्द 'आयत' या पर्ण कहे गये हैं। गीता के रचनाकार द्वारा इन पर्णरूप आयतों में ही उसके **ॠक्-साम-यजु**[15] उद्देश्य समाहित हैं देखें- 9.17-25 की टीका। जबकि *लिखित पर्ण* को *सहीफ़ा* कहते हैं। बहुवचन के रूप में *सुहुफ़* क़ुरआन के लिये आता है चूँकि माना जाता है कि क़िताब पन्नों का समूह है इसलिये वह बहुवचन भी है। बहुवचन रूप में ही क़ुरआन को पूर्व में 'सर्वेषु वेदेषु' 'सर्ववेदेषु' कहा है तो 'वेदे' वचनशास्त्र यानी बरमकवाणी को। अत: उस विदेशी मूल के धर्म को जो पर्णोंसहित जानता है वह **वेद**—'परधर्मग्रन्थ' को उसके उद्देश्यसहित भलीभाँति समझनेवाला है।

विषय-भोग काम-भोग और जघन्य आदि कार्योंवाली उसकी शाखाएँ सत्त्व रज व तमरूप त्रिगुणों से बढ़ी हुई या बढ़ाई गई हैं जो **उर्ध्व** रूप में अपने जन्म-क्षेत्र में भी फैली

पीछे छोड़ जाता है और सूर्य, चन्द्र तथा साधारण अग्नियों के प्रकाश को छोड़कर दिव्य ज्योतियों को प्राप्त करता है।''

15- इसके लिए प्रचलित भगवद्गीता शङ्करभाष्य 15.1 का भी भाष्य देखा जा सकता है।

हुई हैं और **अध** रूप में अन्य बाहरी क्षेत्रों में भी फैली हुई हैं तथा इसी प्रकार त्रिगुण कर्मों के अनुसार लोगों को बाँधनेवाली उसकी जड़ें जो ऊर्ध्वरूप में अपने मूलस्थान से शुरु हुई वही यहाँ **अधः**—'नीचे' **मनुष्यलोके**—'भारतीय लोक-समाज में' फैल रही हैं। श्लोक में दूसरा **अधः** भारत के लिये प्रयुक्त है।

इस अन्धकाररूप धर्म को जिस प्रकार से बताया जाता है उस प्रकार से वह यहाँ **इह**—'ज्ञानियों को अपने अध्ययन के दौरान' उपलब्ध नही हुआ अर्थात् जैसा उसे बताया जाता है उसका उस प्रकार से होना सम्भव ही नही कि यह धर्म इस प्रकार से अस्तित्व में आ सकता है क्योंकि मूलभूत रूप से न इसका आदि ही सिद्ध होता है और न अन्त और इसके बाबजूद भी जिस प्रकार से इसकी स्थापना की गई है वह भी उचित रूप में नही है। इसलिए ऐसे अन्धकारमय धर्म को जिसकी जड़रूप नींव बहुत मजबूत है उसे अपने दृढ़ अनासक्तरूप शस्त्र से काटकर अर्थात् ऐसे धर्म का पूर्णतया त्याग करके— (पृष्ठ-383-385)

अध्याय-18

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥ १८.६४
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ १८.६५
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ १८.६६*

अर्थ— मेरे सर्वगुह्यतम परम वचन को (एक बार-) फिर सुन। तू मुझे अति-प्रिय है। इस कारण यह हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा ॥64॥ मुझे नमस्कार कर मेरा भक्त व मेरा याजी होकर मुझमें मनवाला हो। तू मेरा प्रिय है (इसलिए-) मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू मुझे ही प्राप्त होगा ॥65॥ (इसके लिए तू-) सर्वधर्मों को त्यागकर एकमात्र मुझे शरण कर। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा चिन्ता मत कर ॥66॥

भाषा— तुम सब लोग मुझे प्रिय हो इसलिये तुम्हारे हित के लिये सन्देश रुप में फिर से कहता हूँ कि तुम मेरी बात मानो यदि तुम मेरी सुनोगे तो तुम मेरे अनुसार परधर्म से मोक्ष को प्राप्त करोगे यह मेरा वायदा है। इसलिये परधर्म के समस्त कर्म-सम्बन्धी विषयों को छोड़कर मुझे सुनो फिर मैं तुम्हें परधर्म के समस्त पापों से मुक्त कर लूँगा सङ्कोच मत करो बस मेरा अनुसरण करो। उशना कवि से कहते हुए इन बातों के द्वारा आचार्य शङ्कर दूसरे लागों को अपना सन्देश दे रहे थे।

क़ुरआन 3.195 में कहा है— *"उनके पालनहार ने उनकी दुआ स्वीकार की, कि मैं तुममें से किसी का कर्म नष्ट करने वाला नहीं, चाहे वह मर्द हो या औरत, तुम सब एक*

दूसरे से हो। अत: जिन लोगों ने हिजरत (अल्लाह के मार्ग में प्रवास) की और जो अपने घरों से निकाले गये और मेरे मार्ग में सताये गये और वह लड़े और मारे गये, मैं उनके पाप अवश्य उनसे दूर कर दूँगा और उनको ऐसे बाग़ों में दाख़िल करुँगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी।"

आगे लोगों को सचेत करते हुए आचार्य शङ्कर ने कहा है—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ १८.६७
य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ १८.६८
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ १८.६९

अर्थ— इस गुह्यतम वचन को तू कभी भी न अ-तपस्वी से न अ-भक्त से और न अशुश्रुष से कहना और न (उससे-) जो मुझे द्वेष-दृष्टि से देखता है ॥67॥ (परधर्म से लोगों को मुक्त करने के लिए-) जो मनुष्य इस परमगुह्य वचन को मेरे भक्तों में प्रचारित करेगा मेरे प्रति (ऐसी-) परम भक्ति करके वह नि:सन्देह मुझे ही प्राप्त होगा ॥68॥ उससे बढ़कर न तो मनुष्यों में कोई मेरा प्रिय करनेवाला (-होगा) और न उससे बढ़कर अन्य कोई पृथ्वी पर मेरा प्रिय होगा ॥69॥

भाषा— शङ्कर अपने प्रिय कर्ताओं को सन्देश देते हुए कहते हैं कि परधर्म से मुक्त करानेवाली यह गोपनीय बात तुम लोग **अतपस्यकाय**—'परधर्म से मुक्ति का सङ्घर्ष न करनेवालों से' **अभक्ताय**—'मुक्ति पर विश्वास न करनेवालों से' और **अशुश्रूषवे**—'मुक्ति की बात को न सुननेवालों से' मत कहना और उनसे भी नही जो मेरे प्रति द्वेष-दृष्टि रखते हैं अन्यथा वे लोग भड़क जाएँगे बल्कि मुक्ति की यह बात गोपनीय तरीके से ही लोगों को समझना और इसका लोगों में गोपनीय रूप से ही प्रचार करने को कार्य करना। ऐसा जो करेगा वह मेरे प्रति बड़ा उपकार करनेवाला होगा तथा नि:सन्देह वह मेरे लक्ष्य को प्राप्त करेगा। ऐसे मनुष्य से बढ़कर मेरा प्रिय करनेवाला कोई न होगा क्योंकि लोगों को परधर्म से मुक्त करने का यह कार्य हमें गोपनीय तरीके से ही करना है।

जिसे गुह्यतम वचन कहा है वह परधर्म से लोगों को मुक्त करने-करानेवाला गोपनीय कार्य था। हम जिसे **गुह्य-यान** और **सहज-यान** कहते हैं वह यही गुह्यतम मार्ग था जो लोगों को गोपनीय तरीके से मुक्त करने के लिए बनाया गया था जिसके बुद्धिमान् कार्यकर्ता अपने सहज व्यवहार और सहज बुद्धि से भी कार्य करते थे क्योंकि उस समय धर्मांतरण बहुत तेजी से हो रहा था जिसका प्रत्यक्ष विरोध करना घातक था इसलिए यह अभियान गुप्त प्रकार से चलाये जाने को कहा ताकि किसी को इसके बारे में पता न चले

और परधर्म के भक्त भड़के न इसीलिए कहा है कि इसे ऐसे लोगों को मालूम मत होने देना जो तुम्हारे और मेरे विरोधी हैं। अगले श्लोकों में कहा है—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥१८.७०
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥१८.७१
कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥१८.७२*

अर्थ— और जो हमारे इस धर्म-संवाद को पढ़ेगा। उसके ज्ञान-यज्ञ से मैं इष्ट होऊँगा— ऐसा मेरा मत है ॥70॥ जो भी मनुष्य श्रद्धावान् और द्वेषरहित होकर (इस संवाद को-) सुनेगा। वह भी (परधर्म पाप से-) मुक्त होकर पुण्यकर्म करनेवाले शुभ लोकों को प्राप्त होगा ॥71॥ क्या हे पार्थ तूने इस गुह्यतम संवाद को एकाग्रचित्त से सुना? क्या तेरा हे धञ्जजय अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया? ॥72॥" आचार्य शङ्कर

भाषा— अबतक हमें इस संस्मरणीय संवाद के द्वारा गीता की पूरी क्रान्ति समझ आ गई होगी कि इस क्रान्ति का उद्देश्य क्या था....? जिसके लिए गीता का यह पाठ तैयार करवाया गया और इसे सार्वजनिक किया गया ताकि इस माध्यम से यह लोगों तक पहुँचे और लोग इसके उद्देश्य को समझें कि गीता का यह संवाद क्यों कहा है? इस प्रकार इसके द्वारा हमने अबतक आद्य-प्रणेता बरमक से लेकर आचार्य शङ्कर तक की क्रान्ति को संस्मरण तौर पर पढ़ लिया होगा। लेकिन अब गीता अपने समापन की ओर है जो कि हमें महत्वपूर्ण बातें भी बताती है एक तो यही कि गीता का संस्मरणीय संवाद लिखित रूप से तैयार हो चुका था जिसे पढ़ने की भी बात की गई और सुनने की भी। तभी कहा है कि जो हमारे इस संवाद को पढ़ेगा उसके द्वारा भी यह एक प्रकार का ज्ञान-यज्ञ होगा जिससे मैं शङ्कर अपने को इष्ट समझूँगा ऐसा मेरा मानना है। दूसरा इस संवाद को श्रद्धावान् और द्वेषरहित लोगों को सुनने के लिए कहा गया जिसे वह समझें और परधर्म से अपने को मुक्त करके शुभकर्म करनेवाले लोगों की सङ्गतों को प्राप्त करें। इस संवाद को लिखने का उद्देश्य सिर्फ स्वयं शङ्कर के काल तक सीमित नही था बल्कि आगे की स्थिति को भी ध्यान में रखते हुए इसे तैयार करवाया गया था ताकि लोग आगे भी इससे सचेत हो। इसलिए शङ्कर अपने श्रोता के रूप में लोगों से पूछना चा रहे हैं कि क्या तुम लोगों ने इस गुह्यतम संवाद को भलीभाँति सुन और समझ लिया है या नही? क्या परधर्मरूपी अज्ञान से जनित तुम्हारा मोह नष्ट हो गया है या नही? यदि हो गया है तो फिर इस परधर्म को ग्रहण मत करना। यह बात आगे के लोगों पर ही लागू होती है। (पृष्ठ-430-433)

भगवद्गीता के अंश समाप्त

पुस्तक: श्रीमद्भगवद्गीता : एक इतिहास (पेपरबैक)

लेखक: के. पी. सिंह

प्रकाशक: मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

संस्करण: 2021

पृष्ठ: 447

मूल्य: 750

वजनः 480 ग्राम

साइजः 8.5 x 5.5”

कृपया सम्पूर्ण पुस्तक का अध्ययन करें

मोतीलाल बनारसीदास

41 यू. ए. बंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली 110 007, **फोनः** 011-23851985

अशोक राजपथ, पटना 800 004, **फोनः** 0612-2671442

चौक, वाराणसी 221 001, **फोनः** 0542-2412331

www.mlbd.co.in
https://www.mlbd.co.in/productdetail/2216/bhagavad-gita
@ Rs. 562

Amazon
https://www.amazon.in/Bhagavad-Gita-K-P-Singh/dp/8120842820/ref=sr_1_3?qid=1636211588&qsid=261-5665621-0900835&refinements=p_lbr_books_authors_browse-bin%3AK.+P.+Singh&s=books&sr=1-3&sres=9351160378%2CB01M67R47A%2C8120842820
@ Rs. 650

Flipkart
https://www.flipkart.com/shimad-bhagavad-gita-ek-itihaas/p/itmb3a520034f725?pid=9788120842823&lid=LSTBOK97881208428231BYB4B&marketplace=FLIPKART&store=bks&srno=b_1_24&otracker=browse&fm=organic&iid=78de9b85-0274-41b1-97f9-0247294bb05c.9788120842823.SEARCH&ppt=None&ppn=None&ssid=n7o4i73r4w0000001634924342940
@ Rs. 695

exoticindiaart
https://www.exoticindiaart.com/book/details/shrimad-bhagavad-gita-history-qzz319/
@ 805

almit books & distrib.
@ Rs. 550
Call us : 8410829462

श्रीमद्भगवद्गीताः एक इतिहास

के. पी. सिंह

प्रिय पाठकों से अनुरोध है कि श्रीमद्भगवद्गीता के सम्बन्ध में वह पुरानी या पूर्व-प्रचलित धारणाओं, मिथकों, पूर्वाग्रहों एवं लोक-मान्यताओं में फैली भ्रामक बातों को एक तरफ कर इस पुस्तक के माध्यम से उसके वास्तविक आधार को जानें और अपने भावों को संयमित रखते हुए अतीत की जानकरी का विहङ्गम आनन्द उठायें क्योंकि पूर्व में जो हो गया सो हो गया। वहीं पूर्व के रचनाकार ऐतिहासिक तथ्यों व घटनाओं को किस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से संकलित करते थे- गीता महाभारत रामायण स्मृतियाँ और बुद्धचरित आदि ग्रन्थ उनके बेहतरीन उदाहरण हैं। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता को उसी के मौलिक दृष्टिकोण से समझिये।

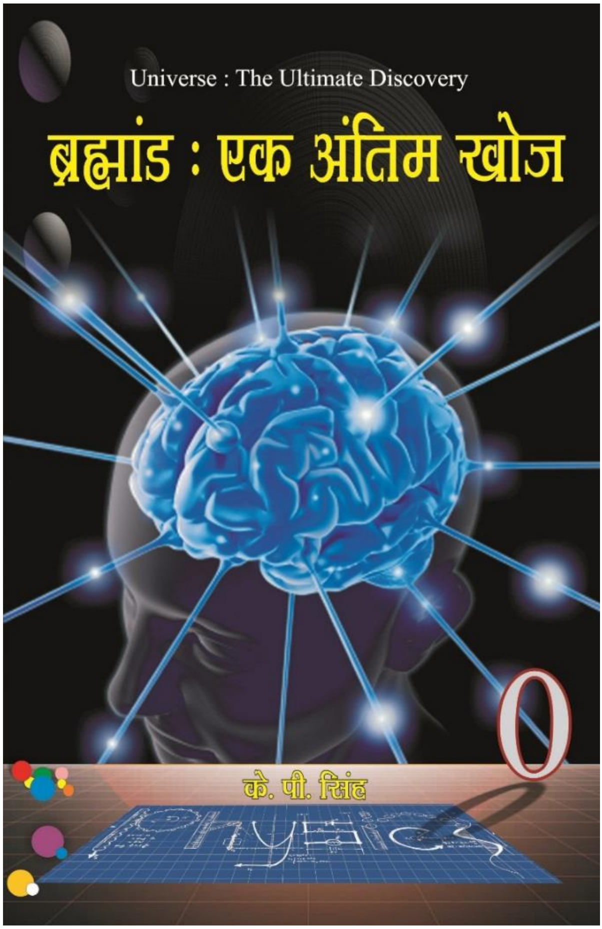
MOTILAL BANARSIDASS
SINCE 1903 IN INDOLOGY
Motilal Banarsidass
mlbd@mlbd.co.in
www.mlbd.co.in
motilalbanarsidass

₹ 750

Hinduism

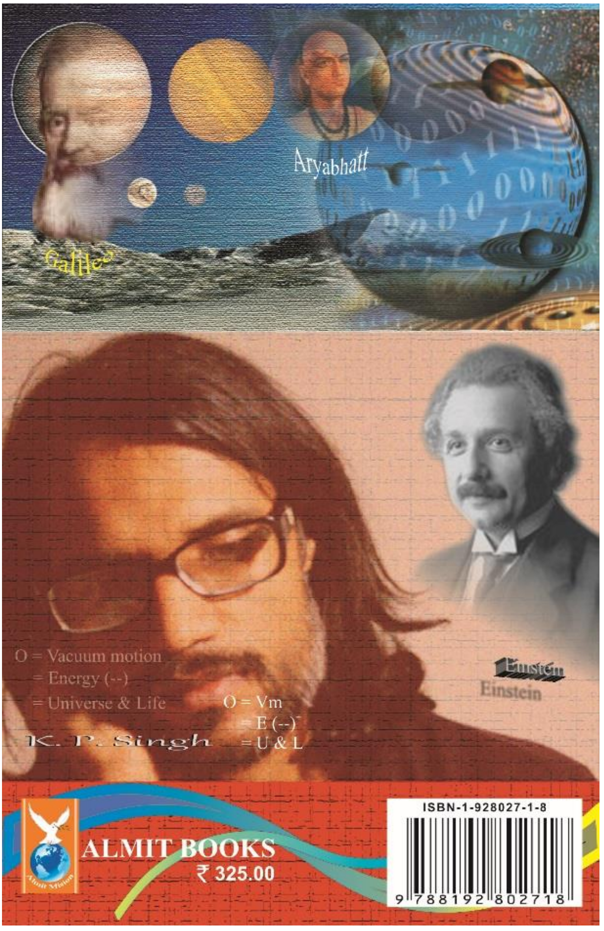
ISBN 978-81-208-4282-3
9 788120 842823

विज्ञापन



हमने 'श्रीसूर्यनारायम चौधरी' का संस्कृतसहित हिन्दी किया अनुवाद "बुद्धचरित" भी Digital Text करके अपलोड कर दिया है। उसका भी लाभ उठायें। देखें

KPS-2 Buddhacarita, Buddhcharit, Buddhacharita, बुद्धचरित (संस्कृत हिन्दी) By Surya Narayan Choudhari



ब्रह्मांड : एक अन्तिम खोज (पेपरबैक)
के. पी. सिंह
संस्करण- 2013
ISBN-9788192802718
कॉपीराइट न.-L 10044/13
पृष्ठ-424
साइज- 8.5 X 5.5” (आकर्षक बाइंडिग)
मूल्य- 325